॥ ओ३म् ॥

अथ-

आर्य्याभिविनयं

भाषा पदार्थ तथा भावार्थ सहित

जिस को

श्रीमान् मुन्शी मन्नुलाल जी माथुर ज़िला
रोहतक निवासी के पुत्र कृपाकृष्ण
अमीन अदालत दीवानी
मुरादाबाद ने
सर्व मुमुक्षुजनों के हितार्थ

महर्षि श्रीस्वामिदयानन्द सरस्वती
महाराजकृत वेदभाष्य से
संग्रह किया

उसीको

लक्ष्मीनारायण यन्त्रालय
में छपाकर प्रकाशित किया
मुरादाबाद

प्रथमवार] संवत् १९६१ [१०००

॥ ओ३म् ॥

निवेदन

प्रायः प्रेमीजनों के हृदय में यह इच्
हुआ करती थी कि-यदि आर्य्याभिविनय पद
तथा भावार्थ सहित छपजावे तो उस से अधि
यह लाभ हो कि-एक वार मन्त्रों के पद २
अर्थ याद कर लेने और उन के भावार्थ सम
लेने से पाठ करते समय अर्थों का ज्ञान हृ
में बना रहे जो केवल पाठ करने से अधिक
विशेषता रखता है मैंने उन के मनोरथपूर्त्यं
एकसहस्र पुस्तक मुद्रित कराये हैं, जो वि
विना मूल्य वितरण किये जायंगे आशा है वि
प्रेमी जन इस से इच्छापूर्वक लाभ उठावे
और आगे जो भद्र पुरुष इसे छपवाना चा
वे छपवासकते हैं ॥

सज्जन सेवक-
कृपाकृष्ण अमीन
मुरादाबादस्थः

ओ३म् ॥

तत् सत् परब्रह्मणे नमः ॥

अथार्याभिविनय प्रारम्भः ।

ओं शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा । शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः (१) ऋ० अ० १ अ० ६ व० १ मं० १८ ९ * ।

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हमारे लिये (उरुक्रमः) जिस के बहुत पराक्रम है वह (मित्रः) सबका सुख करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखकारी वा जिस के वहुत पराक्रम है वह (वरुणः) सब में अति उन्नति वाला हम लोगों के लिये (शम्) शान्ति सुख का देनेवाला वा जिसके बहुत पराक्रम है वह (अर्य्यमा) न्याय करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (शम्) आरोग्य सुख का देनेवाला जिस के बहुत पराक्रम है वह (बृहस्पतिः) महत् वेद

* इनसे अष्टक अध्याय वर्ग मंत्र जान लेना ।

विद्या का पालने वाला वा जिसके बहुत पराक्रम है वह (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य देने वाला(नः) हम लोगों के लिये (शम्) ऐश्वर्य्य सुखकारी वा जिस के बहुत पराक्रम है वह (विष्णुः)सब गुणों में व्याप्त होने वाला परमेश्वर तथा उक्त गुणों वाला विद्वान् सज्जन पुरुष (नः) हम लोगों के लिये पूर्वोक्त सुख और(शम्) विद्या में सुख देनेवाला (भवतु) हो ।

भावार्थ—परमेश्वर के समान मित्र उत्तम न्याय का करने वाला ऐश्वर्यवान् बड़े२पदार्थों का स्वामी तथा व्यापक सुख देने वाला और विद्वान् के समान प्रेम उत्पादन,करने, धार्मिक सत्य व्यवहार वर्त्तने, विद्या आदि धनोंको देने और विद्या पालने वाला शुभ गुण और सत्कर्मों में व्याप्त महापराक्रमी कोई नहीं होसकता इस से सब मनुष्यों को चाहिये कि परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना,उपासना निरन्तर विद्वानों की सेवा और संग करके नित्य आनन्द में रहें ।

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् । होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥२ ॥

ऋ० । १ । १ । १ । १ ।

पदार्थान्वय भाषा—(यज्ञस्य) हम लोग विद्वानों के सत्कार संगम महिमा और कर्मके (होतारं) देने तथा ग्रहण करने वाले (पुरोहितं) उत्पत्तिं के समयसे पहिले परमाणु आदि सृष्टि के धारण करने और (ऋत्विजं) वारंवार उत्पत्ति के समय में स्थूल सृष्टिके रचने वाले तथा ऋतु ऋतु में उपासना करने योग्य (रत्नधातमम्) और निश्चयकरके मनोहर पृथिवी वा सुवर्णआदि रत्नों के धारण करने वा (देवं) देने तथा सब पदार्थों केप्रकाश करने वाले परमेश्वर की (ईळे) स्तुति करतेहैं तथा उपकारके लिये (यज्ञस्य) हम लोग विद्यादि दान और शिल्पक्रियाओंसे उत्पन्न करने योग्य पदार्थों के (होतारं) देने हारे तथा (पुरोहितं) उनपदार्थोंके उत्पन्न करनेके समयसे पूर्वभी छेदन धारण करने और आकर्षणादि गुणों के धारण करनेवाले (ऋत्विजम्) शिल्पविद्या साधनोंके हेतु (रत्नधातमम्) अच्छे सुवर्ण आदि रत्नोंके धारण कराने तथा (देवं) युद्धादिकोंमे कलायुक्त शस्त्रोंसे विजय करानेहारे भौतिक अग्निको (ईळे) वारंवार इच्छा करतेहैं ॥ यहां अग्नि शब्दके दोअर्थ करनेमेंप्रमाण

ये है कि (इन्द्रं मित्रं०) इस ऋग्वेद के मंत्रसे यह जाना जाताहै कि एकसद्ब्रह्म के इन्द्र आदि अनेक नामहैं तथा (तदेवाग्नि) इस यजुर्वेदके मंत्रसेभी अग्नि आदि नामों करके सच्चिदानन्दादि लक्षण वाले ब्रह्मको जानना चाहिये (ब्रह्मह्य०) इत्यादि शतपथ ब्राह्मणके प्रमाणों से अग्निशब्द ब्रह्म और आत्मा इनदो अर्थोंका वाची है (अयं वा०) इस प्रमाणमें अग्निशब्दसे प्रजा शब्द करके भौतिक और प्रजापतिशब्दसे ईश्वर का ग्रहण होताहै (अग्नि०) इस प्रमाण से सत्याचरणके नियमोंका जो यथावत् पालनकरनाहै सोही व्रतकहाता और इस व्रतका पति परमेश्वरहै (त्रिभिःपवित्रैः०) इस ऋग्वेदके प्रमाणसे ज्ञानवाले तथा सर्वज्ञ प्रकाशकरनेवाले विशेषणसे अग्निशब्द करके ईश्वरका ग्रहण होता है निरुक्तकार यास्कमुनिजीने भी ईश्वर और भौतिक पक्षोंको अग्निशब्दकी भिन्न भिन्न व्याख्या करके सिद्धकियाहै सोसंस्कृतमें यथावत् देखलेना चाहिये परंतु सुगमता के लिये कुछ संक्षेप से यहां भी कहते हैं यास्क मुनिजी ने स्थौलाष्ठीवि ऋषिके मतसे अग्नि शब्दका अग्रणी

सबसे उत्तम अर्थ किया है अर्थात् जिसका सब यज्ञों में पहिले प्रतिपादन होता है वह सबसे उत्तम ही है इसकारण अग्नि शब्द से ईश्वर तथा दाह गुणवाला भौतिक अग्नि इन दोही अर्थोंका ग्रहण होता है (प्रशासितारं०) (एतमे०) मनुजी के इन दो श्लोकों मेंभी परमेश्वर के अग्नि आदि नाम प्रसिद्ध हैं (ईळे०) इस ऋग्वेद के प्रमाण सेभी उस अनन्त विद्यावाले और चेतन स्वरूप आदि गुणोंसे युक्त परमेश्वर का ग्रहण होता है ॥ अब भौतिक अर्थ के ग्रहण करने में प्रमाण दिखलाते हैं (यदश्वं) इत्यादि शतपथ ब्राह्मण के प्रमाणों से अग्नि शब्द करके भौतिक अग्निका ग्रहण होता है यह अग्नि बैलके समान सब देश देशांतरों में पहुंचानेवाला होनेके कारण वृष और अश्वभी कहाता है क्योंकि वह कलाओं के द्वारा अश्व अर्थात् शीघ्र चलानेवाला.होकर शिल्पविद्या के जाननेवाले विद्वान् लोगों के विमान आदि यानोंको वेगसे वाहनों के समान दूर दूर देशोंमें पहुँचाता है (तूर्णिः०).इस प्रमाण सेभी भौतिक अग्नि का ग्रहण है·क्योंकि वह उक्त शीघ्रता आदि हेतुओं से हव्यवाट्

और तूर्णिभीकहाता है (अग्निर्वैयो०) इत्यादिक और भी अनेक प्रमाणों से अश्वनाम करके भौतिक अग्निका ग्रहण कियागया है (वृषो०) जब इस भौतिक अग्नि को शिल्पविद्यावाले विद्वान् लोग यंत्र कलाओं से सवारियों में प्रदीप्त करके युक्त करते हैं तव (देव वाहनः) उन सवारियों में बैठेहुए विद्वान् लोगों को देशान्तर में बैलों वा घोड़ों के समान शीघ्र पहुँचानेवाला होता है हे मनुष्यो ! तुमलोग (हविष्मंत०) हे मनुष्य लोगों तुम वेगादि गुणवाले अश्वरूप अग्निके गुणोंको (इड़ते) खोजो इस प्रमाण सेभी भौतिक अग्निका ग्रहण है ॥

भावार्थ भाषा—इस मंत्र में श्लेषालंकार से दो अर्थोंका ग्रहण होता है ॥ पिता के समान कृपाकारक परमेश्वर सव जीवों के हित और सव विद्याओं की प्राप्ति के लिये कल्प कल्प की आदि में वेदका उपदेश करता है जैसे पिता वा अध्यापक अपने शिष्य वा पुत्रको शिक्षा करता है कि तू ऐसा कर वा ऐसा बचन कह सत्य बचन बोल इत्यादि शिक्षा को सुनकर बालक वा शिष्य भी कहता है कि सत्य बोलूंगा पिता और

आचार्य्य की सेवा करूंगा झूंठ न कहूंगा इसप्रकार जैसे परस्पर शिक्षक लोग शिष्य वा लड़कों को उपदेश करते हैं वैसे ही (अग्निमीळे०) इत्यादि वेद मंत्रों में भी जानना चाहिये क्योंकि ईश्वर ने वेद सब जीवों के उत्तम सुख के लिये प्रगट किया है इसी (अग्निमीळे०) वेदके उपदेश का परोपकार फल होनेसे इस मंत्र में ईड़े यह उत्तम पुरुष का प्रयोग भी है (अग्नि मीड़े) परमार्थ और व्यवहार विद्या की सिद्धिके लिये अग्नि शब्द करके परमेश्वर और भौतिक ये दोनों अर्थ लिये जाते हैं जो पहिले समय में आर्य लोगों ने अश्वविद्या के नाम से शीघ्र गमन का हेतु शिल्पविद्या उत्पन्न की थी वह अग्नि विद्या की ही उन्नति थी आपही आप प्रकाशमान सब का प्रकाश और अनन्त ज्ञानवान आदि हेतुओं से अग्नि शब्द करके परमेश्वर तथा रूपदाह प्रकाश वेग छेदन आदि गुण और शिल्पविद्याके मुख्य साधक आदि हेतुओंसे प्रथममंत्रमें भौतिक अर्थका ग्रहण किया है।

अग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त्पोष॑मे॒व दि॒वे

दिवे दिवे। यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३॥ ऋ० १।१।१।३ ॥

पदार्थ–यह मनुष्य (अग्निना) (एव) अच्छी प्रकार ईश्वरकी उपासना और भौतिक अग्नि ही को कलाओं में संयुक्त करने से(दिवे दिवे) प्रतिदिन (पोषं) आत्मा और शरीरकी पुष्टि करने वाला (यशसं) जो उत्तम कीर्त्ति का बढाने वाला और (वीरवत्तमम्) जिस को अच्छे अच्छे विद्वान् वा शूरवीर लोगचाहा करतेहैं (रयिं) विद्या और सुवर्णादि उत्तम उस धन को सुगमतासे (अश्नवत्) प्राप्त होता है ।

भावार्थ–इस मंत्र में श्लेषालंकार से दो अर्थोंका ग्रहण है, ईश्वरकी आज्ञामें रहने तथा शिल्पविद्या संबन्धि कार्य्योंकी सिद्धिके लिये भौतिक अग्नि को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को अक्षय अर्थात् जिसका कभीनाश नहींहोता सो धन प्राप्त होता है तथा मनुष्य लोग जिस धन से कीर्त्ति की वृद्धि और जिस धनको पाके वीरपुरुषों से युक्त होकर नाना सुखों से युक्त होते हैं। सबको उचित है कि इस धन को अवश्य प्राप्त करैं।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति ॥ ४ ॥ ऋ० १। १। १। २।

पदार्थान्वय भाषा०-(पूर्वेभिः) वर्त्तमान वा पहले समय के विद्वान् (नूतनैः) वेदार्थ के पढ़ने वाले ब्रह्मचारि तथा नवीन तर्क और कार्यों में ठहरने वाले प्राण (ऋषिभिः) मंत्रों के अर्थों को देखने वाले विद्वान् उन लोगों के तर्क और कारणों में रहने वाले प्राण इन सभों को (अग्निः) वह परमेश्वर (ईड्यः) स्तुति करने योग्य और यह भौतिक अग्नि नित्य खोजने योग्य है। प्राचीन और नवीन ऋषियों में प्रमाण येहै कि (ऋषि प्रशंसा ०) वे ऋषिलोग गूढ़ और अल्प अभिप्राय युक्त मंत्रों के अर्थों को यथावत् जानने से प्रशंसा के योग्य होते हैं और उन्हीं ऋषियों की मंत्रों में (दृष्टि) अर्थात् उनके अर्थों के विचार में पुरुषार्थ से यथार्थ ज्ञान और विज्ञानकी प्रवृत्ति होती है इससे वे सत्कार करने योग्यभी हैं तथा (साक्षात्कृत०) जो धर्म और अधर्म की

ठीक ठीक परीक्षा करनेवाले धर्मात्मा और यथार्थ वक्ताथे तथा जिन्होंने सब विद्या यथावत् जानली थी वेही ऋषिहुए और जिन्होंने मंत्रों के अर्थ ठीक ठीक नहीं जानेथे और नहीं जानसकते थे उनलोगों को अपने उपदेश द्वारा वेद मंत्रोंका अर्थ सहित ज्ञान करातेहुए चले आये इस प्रयोजन के लिये कि जिससे उत्तरोत्तर अर्थात् पीढ़ी दरपीढ़ी आगे कोभी वेदार्थका प्रचार उन्नति के साथ बनारहे तथा जिससे कोई मनुष्य अपने और उक्त ऋषियों के लिखेहुए व्याख्यान सुनने के लिये अपने निर्बुद्धिपनसे ग्लानी को प्राप्त हो इस बातके सहाय में उनको सुगमता से वेदार्थ का ज्ञान होनेके लिये उन ऋषियों ने निघंटु और निरुक्त आदि ग्रंथोंका उपदेश किया है जिससे कि यथार्थ सब मनुष्यों को वेद और वेदांगोंका बोध होजावे (पुरस्तान्मनुष्य०) इस प्रमाणसे ऋषिशब्दका अर्थतर्कही सिद्धहोता है (अविज्ञात०) यह न्यायशास्त्रमें गौतममुनिजीने तर्कका लक्षण कहाहै इससे यही सिद्ध

होताहै कि जोसिद्धांत जाननेके लिये विचार कि याजाता हैं उसी का नाम तर्क है (प्राणा०) इन शतपथके प्रमाणोंसे ऋषिशब्दकरके प्राण और देवशब्द करके ऋतुओंका ग्रहण होताहै (सः) (उत) वहीपरमेश्वर (इह) इससंसार वा इस जन्ममें (देवान्) अच्छीअच्छी इन्द्रियां विद्या आदि गुण भौतिक अग्नि और अच्छे अच्छे भोगने योग्य पदार्थों को (अवक्षति) प्राप्त करता है (अग्निः पूर्व०) इसमंत्रकाअर्थ निरुक्तकारने जैसाकुछ कियाहै सोइसमंत्रके भाष्य में लिखदियाहै ॥

भावार्थ०—जोमनुष्य सब विद्याओंको पढ़के औरोंको पढ़ातेहैं तथा अपने उपदेशसे सबका उपकार करनेवालेहैं वा हुएहैं वेपूर्वशब्दसे और जोकि अबपढ़नेबाले विद्याग्रहणके लिये अभ्यास करतेहैं वे नूतन शब्दसे ग्रहण किये जाते हैं और वे सब पूर्ण विद्वान् शुभगुण सहित होने पर ऋषि कहाते हैं क्योंकि जो मंत्रों के अर्थों को जानेहुए धर्म और विद्याके प्रचार अपने उपदेश से सबपर कृपा करनेवाले निष्कपट

पुरुषार्थी धर्म के सिद्ध होने के लिये ईश्वरकी उपासना करनेवाले और कार्यों की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि के गुणोंको जानकर अपने कामों को सिद्ध करनेवाले होते हैं तथा प्राचीन और नवीन विद्वानों के तत्त्व जानने के लिये युक्त प्रमाणों से सिद्ध तर्क और कारण वा कार्य्य जगत् में रहनेवाले जो प्राण हैं इन सब से ईश्वर और भौतिक अग्निका अपने अपने गुणोंके साथ खोज करना योग्य है और जो सर्वज्ञ परमेश्वरने पूर्व और वर्तमान अर्थात् त्रिकालस्थ ऋषियों को अपने सर्वज्ञपनसे जानके इस मंत्रमें परमार्थ और व्यवहार ये दो विद्या दिखलाई हैं इससे इसमें भूत वा भविष्य काल की बातों के कहने में कोई भी दोष नहीं आसकता क्योंकि वेद सर्वज्ञ परमेश्वर का वचन है वह परमेश्वर उत्तम गुणों को तथा भौतिक अग्नि व्यवहार कार्यों में संयुक्त किया हुआ उत्तम उत्तम भोग के पदार्थों का देनेवाला होता है पुराने की अपेक्षा एक पदार्थ से दूसरा नवीन और नवीन की अपेक्षा पहिला पुराना

होता है देखो यही अर्थ इस मन्त्र का निरुक्त कारनेभी किया है कि, प्राकृतिजन अर्थात् अज्ञानी लोगों ने जो प्रसिद्ध भौतिक अग्निपाक बनाने आदि कार्य्यों में लिया है वह इस मन्त्र में नहीं लेना किन्तु सबका प्रकाश करनेहारा परमेश्वर और सब विद्याओं का हेतु जिसका नाम विद्युत् है वही भौतिक अग्नि यहां अग्नि शब्द से लिया है (अग्निः पूर्वे०) इस मन्त्र का अर्थ नवीन भाष्यकारों ने कुछ का कुछही करदिया है जैसे सायणाचार्य ने लिखा है कि, (पुरातनैः०) प्राचीन भृगु अङ्गिरा आदियों और नवीन अर्थात् हमलोगों को अग्निकी स्तुत्ति करना उचित है वह देवों को हवि अर्थात् होम में चढ़े हुए पदार्थ उनके खाने के लिय पहुँचाता है ऐसाही व्याख्यान यूरोपखण्ड वासी और आर्य्यावर्त्त के नवीन लोगों ने अङ्गरेजी भाषा में किया है तथा काल्पित ग्रन्थों में अब भी होता है सो यह बड़े आश्चर्य की बात है, जो ईश्वर के प्रकाशित अनादि वेद का ऐसा व्याख्यान जिसका क्षुद्र आशय और निरुक्त शं-

तपथ आदि सत्य ग्रंथों से विरुद्ध होवे वह सत्य कैसे होसकता है ।

अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः दे॒वो दे॒वेभि॒राग॑मत् ॥ ५ ॥

ऋ० । १ । १ । १ । ५ ।

पदार्थान्वयभाषा—जो (सत्यः) अविनाशी (देवः) आपसे आप प्रकाशमान (कविक्रतुः) सर्वज्ञ है, जिसने परमाणु आदि पदार्थ और उनके उत्तम उत्तम गुण रचके दिखलाये हैं (कविक्रतुः) जो सब विद्यायुक्त वेदका उपदेश करता है और जिससे परमाणु आदि पदार्थों करके सृष्टि के उत्तम पदार्थों का दर्शन होता है, वही कवि अर्थात् सर्वज्ञईश्वर है तथा भौतिक अग्नि भी स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों से कलायुक्त होकर देश देशान्तर में गमन करानेवाला दिखलाया है (चित्रश्रवस्तमः) जिसका अतिआश्चर्यरूपी श्रवण है वह परमेश्वर (देवेभिः) विद्वानों के साथ समागम करने से (आगमत्) प्राप्त होता है तथा जो (सत्यः) श्रेष्ठ विद्वानों का हित अर्थात् उनके लिये सुखरूप (देवः) उत्तम गुणोंका

प्रकाश करनेवाला (कविक्रतुः) सब जगत् को जानने और रचनेहारा परमात्मा। और जो भौतिक अग्नि सब पृथिवी आदि पदार्थों के साथ व्यापक और शिल्पविद्या का मुख्यहेतु (चित्रश्रवस्तमः) जिसको अद्भुत अर्थात् अति आश्चर्य्य रूप सुनते हैं वह दिव्यगुणों के साथ (आगमत्) जानाजाता है ॥

भावार्थः—इस मंत्रमें श्लेषालंकार है सबका आधार, सर्वज्ञ, सबका रचनेवाला विनाश रहित अनन्त शक्तिमान् और सबका प्रकाशक आदि गुण हेतुओं के पायेजाने से अग्नि शब्द करके परमेश्वर और आकर्षणादिगुणोंसे मूर्तिमान् पदार्थों का धारण करने हारादिगुणों के होने से भौतिक अग्निका भी ग्रहण होताहै, सिवाय इसके मनुष्योंको यह भी जानना उचित है कि, विद्वानों के समागम और संसारी पदार्थों का उनके गुण सहित विचारने से परमदयालु परमेश्वर अनन्त सुखदाता और भौतिक अग्नि शिल्पविद्या का सिद्ध करनेवाला होता है, सायणाचार्य्यने (गमत्) इस प्रयोग को लोट् लकार का माना हैं सो यह उनका व्याख्यान अशुद्ध है क्योंकि इस प्रयोग

में (छंदसिलुङ्०) यह सामान्यकाल बताने-वाला सूत्र वर्त्तमान है।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥६॥ ऋ० १।१।२।६।

पदार्थ—हे (अंगिरः) ब्रह्माण्ड के अंग पृथिवी आदि पदार्थों को प्राणरूप और शरीर के अंगोंको अन्तर्यामी रूपसे रसरूप होकर रक्षा करनेवाले होनेसे यहां प्राण शब्द से ईश्वर लिया है, (अंग) हे सबके मित्र (अग्ने) परमेश्वर (यत्) जिस हेतुसे आप (दाशुषे) निर्लोभतासे उत्तम उत्तम पदार्थों के दान करनेवाले मनुष्य के लिये (भद्रं) कल्याण जो कि, शिष्ट विद्वानों के योग्य है उसको (करिष्यसि) करते हैं, सो यह (तवेत्) आप ही का (सत्यम) सत्य (व्रतम्) शील है।

भावार्थ—जो न्याय, दया, कल्याण और सब का मित्र भाव करने वाला परमेश्वर है, उसी की उपासना करके जीव इस लोक और मोक्ष के सुख को प्राप्त होता है, क्योंकि, इस प्रकार सुख देनेका स्वभाव और सामर्थ्य केवल परमेश्वरका है दूसरे का नहीं, जैसे शरीरधारी अपने शरीर

को धारण करता है, वैसेही परमेश्वर सब संसार को धारण करता है और इसीसे यह संसार की यथावत् रक्षा और स्थिति होती है।

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ ७ ॥

ऋ० १।१।३।१॥

पदार्थः—अन्वय भाषा—(दर्शत) हे ज्ञान देखने योग्य (वायो) अनन्त बलयुक्त सबके प्राण रूप अन्तर्यामी परमेश्वर आप हमारे हृदय में (आयाहि) प्रकाशित हूजिए, कैसे आपहैं कि जिन्होंने (इमे) इन प्रत्यक्ष (सोमाः) संसारी पदार्थों को (अरंकृताः) अलंकृत अर्थात् सुशोभित कर रक्खा है (तेषां) आपही उन पदार्थों के रक्षक हैं, इससे उनकी (पाहि) रक्षा भी कीजिए और (हवं) हमारी स्तुति को (श्रुधी) सुनिये तथा (दर्शत) स्पर्शादि गुणों से देखने योग्य (वायो) सब मूर्तिमान् पदार्थों का आधार और प्राणियों के जीवन का हेतु भौतिक वायु (आयाहि) सबको प्राप्त होता है, फिर जिस भौतिक वायुने (इमे) प्रत्यक्ष (सोमाः) संसार

के पदार्थों को (अरंकृताः) शोभायमान किया है वही (तेषां) उन पदार्थों की (पाहि) रक्षा का हेतु है और (हवं) जिससे सब प्राणी लोग कहने और सुनने रूप ब्यवहार को (श्रुधी) कहते,सुनते हैं। आगे ईश्वर और भौतिक वायु के पक्ष में प्रमाण दिखलाते हैं (प्रवावृजे) इस प्रमाण में वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक वायु पुष्टिकारी और जीवों का यथायोग्य कामों में पहुचानेवाले गुणों से ग्रहण कियेगए हैं (अथातो०) जो २ पदार्थ अन्तरिक्ष में हैं,उन में प्रथमाग्नि वायु अर्थात् उन पदार्थों में रमण करने वाला कहाताहै,तथा सब जगत् को जानने से वायु शब्द करके परमेश्वर का ग्रहण होता है। तथा मनुष्यलोग वायु से प्राणायाम करके और उनके गुणों के ज्ञान द्वारा परमेश्वर और शिल्प विद्यामय यज्ञ को जान सकता है,इस अर्थ से वायु शब्द करके ईश्वर और भौतिक का ग्रहण होता है अथवा जो चराचर जगत् मैं व्याप्त होरहा है, इस अर्थसे वायु शब्द करके परमेश्वरका तथा जो सबलोकों को परिधिरूप

से घेर रहा है,इस अर्थ से भौतिक का ग्रहण होताहै,क्योंकि, परमेश्वर अंतर्यामी रूप और भौतिक प्राणरूपसे संसारमें रहने वाले हैं इन्हों दो अर्थों की कहने वाली वेदकी(वायवायाहि०) यहऋचा जाननी चाहिये, इसीप्रकार से इस ऋचाका (वायवायाहि दर्शनीयें०) इत्यादि व्याख्यान निरुक्तकारनेभी कियाहै. सो संस्कृतमें देखलेना, वहांभी बायु शब्दसे परमेश्वर और भौतिक इनदोनोंका ग्रहण है,जैसे (वायुःसोम-स्य०) वायु अर्थात् परमेश्वर उत्पन्न हुए जगत् की रक्षा करने वाला और उसमें व्याप्त होकर उसके अंग अंगके साथ भर रहा है,इसअर्थसें ईश्वरका तथा सोम बल्ली आदि ओषधियोंके रस हरने और समुद्रादिकों के ज़लको ग्रहण करने से भौतिक वायुका ग्रहण जानना चाहिये (वायुर्वा अ०) इत्यादि वाक्यों में वायुको अग्निके अर्थमें भी लिया है । परमेश्वर का उ-पदेश है कि, मैं वायुरूप होकर इस जगत् को आपही प्रकाश करता हूं तथा मैं ही अन्तरिक्ष लोक में भौतिकवायुको अग्निके तुल्य परिपूर्ण

और यज्ञादिकों को वायुमंडल में पहुँचाने-वाला हूं।

भषार्थः—इस मंत्रमें श्लेषालंकार है। जैसे परमेश्वर के सामर्थ्य से रचेहुए पदार्थ नित्यही सुशोभित होते हैं, वैसेही जो ईश्वरका रचाहुआ भौतिक वायु है, उसकी धारणासेभी सब पदार्थों की रक्षा और शोभा तथा जैसे जीवकी प्रेम भक्ति से की हुई स्तुति को सर्वगत ईश्वर प्रति-क्षण सुनता है, वैसेही भौतिक वायुके निमित्त सेभी जीव शब्दों के उच्चारण और श्रवण करने को समर्थ होता है।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वा-जिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८। ऋ० १।१।६।१०।

पदार्थः—(वाजेभिः) जो सब विद्याकी प्राप्तिके निमित्त अन्न आदि पदार्थ हैं। और जोउनके साथ (वाजिनीवती) विद्यासे सिद्धकी हुई क्रिया-ओं से युक्त (धियावसुः) शुद्ध कर्मके साथ वास देने। और (पावका) पवित्र करनेवाले व्यवहारों को चिताने वाली (सरस्वती) जिसमें प्रशंसा

योग्य ज्ञान आदि गुण हों, ऐसी उत्तम सब विद्याओं की देने वाली वाणी है. वह हमलोगोंके (यज्ञं) शिल्पविद्या के महिमा और कर्मरूप यज्ञ को (वष्टु) प्रकाश करनेवाली हो ॥

भावार्थः—सबमनुष्यों को चाहिये कि, वे ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थसे सत्यविद्या और सत्यवचनयुक्त कामों में कुशल और सब के उपकार करने वाली वाणी को प्राप्तरहैं, यह ईश्वर का उपदेश है ॥

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम्
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ ९ ॥

ऋ० १।१।९।२

पदार्थः—हे मित्र विद्वान् लोगों (वार्य्याणां) अत्यन्त उत्तम (पुरूणां) आकाश से लेके पृथिवी पर्य्यन्त असंख्यात पदार्थों को (ईशानं). रचने में समर्थ (पुरूतमं) दुष्ट स्वभाववाले जीवों को ग्लानि प्राप्त कराने वाले (इन्द्रं) और श्रेष्ठ जीवों को सब ऐश्वर्य्य के देनेवाले परमेश्वर के तथा (वार्य्याणां) अत्यन्त उत्तम (पुरूणां) आकाश से लेके पृथिवी पर्य्यन्त बहुत से पदार्थों

की विद्याओं के साधक (पुरूतमं) दुष्ट जीवों वा कर्मों के भोग के निमित्त और (इन्द्रं) जीव मात्र को सुख दुःख देनेवाले पदार्थों के हेतु भौतिक वायु के गुणों को (अभिप्रगायत) अच्छी प्रकार उपदेश करो और (तु) जो कि, (सुते) रस खींचने की क्रिया से प्राप्त वा (सोमे)उस विद्यासे प्राप्त होने योग्य (सचा) पदार्थों के निमित्त कार्य्यहैं, उनको उक्त विद्याओं से सबके उपकार के लिये यथायोग्य युक्तकरो।

भावार्थः—इस मंत्रमें श्लेषालंकार है। पीछे के मंत्र से इसमंत्रमें (सखायः) (तु) (अभिप्रगा-यत) इनतीन शब्दोंको अर्थके लिये लेनाचाहिये, इस मंत्रमें यथायोग्य व्यवस्था करके उनके किये हुए कर्मोंका फल देनेसे ईश्वर तथा इन कर्मों के फल भोग करानेके कारण वा विद्या और सबक्रियाओं के साधक होनेसे भौतिक अर्थात् संसारी वायुका ग्रहण किया है ॥

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियं॒ जिन्वमव॑से हूमहे व॒यम्। पू॒षा नो॒ यथा॑

वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१०॥ ऋ० १।८।१५।५।

पदार्थः—हे विद्वन् (यथा) जैसे (पूषा) पुष्टि करनेवाला परमेश्वर (नः) हमलोगों के (वेदसाम्) विद्या आदि धनोंकी (वृधे) वृद्धि के लिये (रक्षिता) रक्षा करनेवाला (स्वस्तये) सुखके लिये (अदब्धः) अहिंसक अर्थात् जो हिंसामें प्राप्त नहुआहो (पूषा) सब प्रकार की पुष्टि का दाता और (पायुः) सब प्रकारसे पालना करने वाला (असत्) होवे वैसे तू हो जैसे (वयम्) हम (अवसे) रक्षाकेलिये (तम्) उस सृष्टिका प्रकाश करने (जगतः) जंगम और (तस्थुषः) स्थावर मात्र जगतके (पतिम्) पालने हारे (धियम्) समस्त पदार्थोंका चिन्तन कर्त्ता (जिन्वम्) सुखोंसे तृप्त करने (ईशानम्) समस्त सृष्टि की विद्याके विधान करने हारे ईश्वर को (हूमहे) आवाहन करते हैं वैसे तू भी कर।

भावार्थःइसमन्त्रमेंश्लेष औरवाचक लु०मनुष्यों को चाहिए कि वैसा अपना व्यवहार करें कि, जैसा ईश्वर के उपदेश के अनुकूल हो और

जैसे ईश्वर सबका अधिपति है, वैसे मनुष्यों को भी सदा उत्तमविद्या और शुभगुणों की प्राप्ति और अच्छे पुरुषार्थ से सबपर स्वामिपन सिद्ध करना चाहिए और जैसे ईश्वर विज्ञान से पुरुषार्थ युक्त सब सुखों को देने, संसार की उन्नति और सबकी रक्षा करनेवाला सब के सुख के लिए प्रवृत्त होरहा है, वैसेही मनुष्यों को भी होना चाहिये॥

आतो॑ दे॒वा अ॑वन्तु नो॒ यतो॒ विष्णु॑र्विच॒क्र॒मे पृ॑थि॒व्याः स॒प्त धाम॑भिः ।१६।

ऋ० १ । २ । ७ । १६ ॥

पदार्थः—(यतः) जिस सदावर्त्तमान नित्य कारणसे (विष्णुः) चराचर संसार में व्यापक जगदीश्वर (पृथिव्याः) पृथिवीको लेकर (सप्त) सात अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, विराट परमाणु, और प्रकृति पर्य्यन्त लोकों को (धामभिः) जो सब पदार्थों को धारण करते हैं उनके साथ (विचक्रमे) रचता है। (अतः) उसी से (देवाः) विद्वान् लोग। (नः) हम· लोगों को (अवन्तु) उक्तलोकों की विद्याको

समझते वा प्राप्त करते हुए हमारी रक्षा करते रहें॥

भावार्थः—विद्वानों के उपदेश के विना किसी मनुष्य को यथावत् सृष्टि विद्या का बोध कभी नहीं होसकता, ईश्वर के उत्पादन करने के बिना किसी पदार्थ का साकार होना नहीं वनसकता और इन दोनों कारणों के जाने विना कोई मनुष्य पदार्थों से उपकार लेने को समर्थ नहीं होसकता और जो यूरोपदेशवाले विल्सन साहिवने पृथिवी उस खण्ड के अवयव से तथा विष्णु की सहायता से देवता हमारी रक्षा करें। यह इस मंत्र का अर्थ अपनी झूंठी कल्पना से वर्णन किया है, सो समझना चाहिये॥

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः। पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य॥१२ ऋ०.१। ३।१०।१८॥

पदार्थः-हे (बृहद्भानो) बडे २ विद्यादि ऐश्वर्य के तेजवाले (यविष्ठ्य) अत्यन्त तरुणावस्थाके युक्त (अग्ने) सबमें मुख्य, सबकी रक्षा करने वाले, मुख्य सभाध्यक्ष महाराज आप (धूर्तैः)

कपटी अधर्मी (अराव्णः) दानधर्म रहित कृ-पण (रक्षसः) महाहिंसक दुष्ट मनुष्यसे (नः) हमको (पाहि) बचाइये (रीषतः) सबको दुःख देनेवाले सिंह आदि दुष्टजीव दुष्टाचारी मनुष्यसे हमको पृथक् रखिये (उत) और (वा) भी (जिघांसतः) मारनेकी इच्छा करते हुए शत्रु से हमारी रक्षा कीजिये ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि सब प्रकार रक्षा के लिये सर्वरक्षक धर्मोन्नति की इच्छा करने वाले सभाध्यक्ष की सर्वदा प्रार्थना करें और अपने आपभी दुष्टस्वभाववाले मनुष्य आदि प्राणियों और सब पापोंसे मनवाणी और शरीरसे दूररहैं.क्योंकि—इसप्रकार रहनेके विना कोई मनुष्य सर्वदा सुखी नहीं रहसकता ॥

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः । चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परि भूरेष्या दिवम् ॥ १३ । ऋ० १ । ४ । १४ । १२ ।

पदार्थः—हे (धृषन्मनः) अत्यन्त प्रगल्भ वि-

ज्ञान युक्त जगदीश्वर जो (परिभूः) सवप्रकार होने (स्वभूत्योजाः) अपने ऐश्वर्य्य वा पराक्रम युक्त से (त्वम्) आप (अवसे) रक्षा आदिके लिये (अस्य) इस संसार के क्लेशों, (रजसः) (पृथिवी) आदिलोकों तथा (व्योमनः) आकाश के (पारे) अपरभागमें भी (एषि) प्राप्त है और आप (ओजसः) पराक्रम आदिके (प्रतिमानम्) अवधि (स्वः) सुख (दिवम्) शुद्ध विज्ञान के प्रकाश (भूमिम्) भूमि और (अपः) जलोंको (आचकृषे) अच्छेप्रकार किया है उन आपकी हम सवलोग उपासना करते हैं ॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर सबसे उत्तम सवमें वर्त्तमान होकर अपने सामर्थ्यसे सव लोकोंको रचके उनमें सवप्रकार से व्याप्त हो धारण कर सवको व्यवस्था में युक्त करता हुआ जीवों से पाप पुण्यकी व्यवस्था करने से न्यायाधीश हो कर वर्त्तता है, वैसेही न्यायाधीश भी सवभूमिके राज्यको संपादन करता हुआ सबके लिये सुखों को उत्पन्न करै ॥

विजा॑नी॒ह्यार्या॒न्ये च॒ दस्य॑वो ब॒र्हि-

ष्मते रन्धया शासदव्रतान् ॥ शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ताते सधमादेषु चाकन ॥

१४ ऋ० १।४।१०।८

पदार्थः—हे मनुष्य! तू (वर्हिष्मते) उत्तम सुखादि गुणोंके उत्पन्न करनेवाले व्यवहार की सिद्धि के लिये (आर्य्यान्) सर्वोपकारकारिक धार्मिक विद्वान् मनुष्यों को (विजानीहि) जान और (ये) जो (दस्यवः) परपीडा करनेवाले अधर्मी दुष्टमनुष्यहैं उनकोजानकर (वर्हिष्मते) धर्मकी सिद्धिकेलिये (रन्धय) मार और उन (अव्रतान्) सत्य भाषणादि धर्मरहित मनुष्यों को (शासत्) शिक्षा करते हुए (यजमानस्य) यज्ञके कर्ता का (चोदिता) प्रेरणा कर्ता और (शाकी) उत्तम शक्तियुक्त सामर्थ्यको (भव) सिद्धकर, जिससे (ते) तेरे उपदेश वा सङ्ग से (सधमादेषु) सुखोंके साथ वर्त्तमान स्थानोंमें (ता) उन (विश्वा) सवकर्मोंको सिद्धकरनेकी (इत्) हीमें (चाकन) इच्छा करताहूं ॥

भावार्थः—मनुष्यों को दस्यु अर्थात् दुष्ट स्वभाव

को छोड़ कर आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ स्वभावों के आश्रय से वर्त्तना चाहिये। वेही आर्यहैं कि, जो उत्तम विद्यादि के प्रचार से सबके उत्तम भोगकी सिद्धि और अधर्मी दुष्टोंके निवारणके लिये निरन्तर यत्न करते हैं, निश्चय करके कोई मनुष्य आर्योंके संगउनसे अध्ययनवा उपदेशोंके विना यथावत् विद्वान् धर्मात्मा आर्य्यस्वभाव युक्त होनेको समर्थ्य नहीं होसकता इससे निश्चय करके आर्य्य के गुण और कर्मोंको सेवन कर निरन्तर सुखीरहना चाहिये॥

न यस्य॒ द्यावा॑ पृथि॒वी अनु॒ व्यचो॒ न सिन्ध॑वो॒ रज॑सो॒ अन्त॑मान॒शुः। नोत स्ववृ॑ष्टिं॒ मदे॑ अस्य॒ युध्य॑त॒ एको॑ अ॒न्यच्च॑कृ॒षे विश्व॑मानु॒षक्॥ १५॥ ऋ० १। ४। १४। १४॥

पदार्थः—(यस्य) जिस (रजसः) ऐश्वर्ययुक्त जगदीश्वरकी (अनुव्यचः) अनन्त व्याप्तिके अनुकूल वर्त्तमान (द्यावापृथिवी) प्रकाश अप्रकाश युक्त लोक और चन्द्रमादि भी (अन्तम्) अन्त अर्थात् सीमाको (न) नहीं (आनशुः) प्राप्तहो

ते हैं। हे परमात्मन् जैसे (स्ववृष्टिम्) अपनी पदार्थों की वर्षा के प्रति (मदे) आनन्द में (युध्यतः) युद्ध करते हुए, मेघ का सूर्य के सामने विजय नहीं होता वे में (एकः) सहाय रहित अद्वितीय जगदीश्वर (अन्यत्) अपने से भिन्न द्वितीय (विश्वम्) जगत् को (आनुषक्) अपनी व्याप्ति से युक्त किया है, इससे आप उपासना के योग्य हैं।

भावार्थः—जैसे परमेश्वर के किस गुण की कोई मनुष्य वा कोई लोक सीमा को ग्रहण नहीं कर सकता और जैसे वह पापयुक्त कर्म करने वाले मनुष्यों के लिये दुःखरूप फल देने से पीड़ा देता, विद्वान् दुष्टों की ताड़ना और सूर्य मेघाऽवयवों को विदारण करता और युद्ध करने वाले मनुष्य के समान वर्त्तता है, वैसे ही सब सज्जन मनुष्यों को वर्त्तना चाहिये।

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह। कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः।

१६ ऋ० १। ३। १०। १४॥

पदार्थः—हे सभापते ! आप (केतुनः) बुद्धि के दान से (नः) हम लोगों को (अंहसः) दूसरे का पदार्थ हरण रूपपाप से (निपाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये (विश्वम्) सब (अत्रिणम्) अन्याय से दूसरेके पदार्थोंको खानेवाले शत्रुमात्र को (संदह) अच्छे प्रकार जलाइये और (ऊर्ध्वः) सब से उत्कृष्ट आप (चरथाय) ज्ञान और सुख की प्राप्त के लिये (नः) हम लोगों को (ऊर्ध्वान्) बडे बडे गुण कर्म और स्वभाव वाले (कृधि) कीजिये तथा (नः) हम को (देवेषु) धार्मिक विद्वानों में (जीवसे) संपूर्ण अवस्था होने के लिये (दुवः) सेवाको (विदाः) नाश कीजिये ॥

भावार्थः—अच्छे गुणकर्म और स्वभाव वाले सभाध्यक्ष राजाको चाहिये कि, राज्य की रक्षा, नीति और दण्ड के भय से सव मनुष्यों को पाप से हठा, सव शत्रुओं को मार, विद्वानों की सबप्रकार सेवा करके प्रजा में ज्ञान सुख और अवस्था बढाने के लिये, सब प्राणियोंको शुभगुण युक्त सदा किया करै ॥

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑ति-

र्माता सपिता सपुत्रः। विश्वे देवाअदितिः पञ्चजनाः अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्। १७ ऋ० १॥६। १६।१०।

पदार्थः—हे मनुष्यों तुम को चाहिये कि (द्यौः) प्रकाशयुक्त परमेश्वर वा सूर्य्य आदि प्रकाश मय पदार्थ (अदितिः) अविनाशी (अन्तरिक्षम्) आकाश (अदितिः) अविनाशी (माता) मा, वा विद्या (अदितिः) अविनाशी (सः) वह (पिता) उत्पन्नकरने वा पालने हारा पिता सः वह (पुत्रः) और स अर्थात् निज विवाहित पुरुष से उत्पन्न वा क्षेत्रज अर्थात् नियोग करके दूसरे से क्षेत्र में हुआ वा विद्या से उत्पन्न पुत्र (अदितिः) अविनाशी है, तथा (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् वा दिव्य गुणवाले पदार्थ (अदितिः) अविनाशी हैं (पञ्च) पांचों ज्ञानेन्द्रिय और (जनाः) जीव भी (अदितिः) अविनाशी हैं, इसप्रकार जोकुछ (जातम्) उत्पन्न हुआ वा (जनित्वम्) होने हारा है, वह सब (अदितिः) अविनाशी अर्थात् नित्य है।

भावार्थः—इस मंत्रमें परमाणु रूप वा प्रवाहरूप

से सब पदार्थ नित्य मानकर दिव आदि पदार्थों की अदिति संज्ञा की है जहां जहां वेदमें अदिति शब्द पडा है वहां वहां प्रकरण की अनुकूलतासे दिव आदि पदार्थों में से जिस जिसकी योग्यता हो, उस २ का ग्रहण करना चाहिये. ईश्वर जीव और प्रकृति अर्थात् जगत् का करण इन के अविनाशी होने से उनकी भी अदिति संज्ञा है।

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ॥ अर्यमा देवैः सजोषाः ।
१८ । ऋ० १ । ६ । १७ । १ ॥

पदार्थः—जैसे परमेश्वर धार्मिक मनुष्यों को धर्म प्राप्त करता है, वैसे (देवैः) दिव्य गुण, कर्म, और स्वभाव वाले विद्वानोंसे (सजोषाः) समान प्रीति करने वाला (वरुणः) श्रेष्ठ गुणों में वर्त्तने, (मित्रः) सबका उपकारी और (अर्यमा) न्याय करने वाला (विद्वान्) धर्मात्मा, सज्जन विद्वान् (ऋजुनीती) सीधी नीति से (नः) हम लोगों को धर्म विद्या मार्ग को (नयतु) प्राप्त करै।

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु० परमेश्वर

वा आप्त मनुष्य सत्य विद्या के ग्राहक स्वभाव वाले पुरुषार्थी मनुष्य को उत्तम धर्म और क्रियाओं को प्राप्त करता है और को नहीं।

त्वं सो॑मासि सत्प॑ति॒स्त्वं रा॒जोत वृ॑त्र॒हा। त्वं भ॒द्रो अ॑सि॒ क्रतु॑ः।

११। ऋ० १।६।११।५।

पदार्थः—हे (सोम) समस्त संसार के उत्पन्न करने वा सब विद्याओंके देने वाले (त्वम्) परमेश्वर वा पाठशाला आदि व्यवहारों के स्वामी विद्वान् आप (सत्पतिः) अविनाशी जो जगत् कारण वा विद्यमान कार्य्य जगत् है उसके पालने हारे (असि) हैं (उत) और (त्वम्) आप (वृत्रहा) दुःखदेने वाले दुष्टोंके विनाशकरने हारे (राजा) सबके स्वामी विद्याके अध्यक्षहैं, वा जिस कारण (त्वम्) आप (भद्रः) अत्यन्त सुख करने वाले हैं वा (क्रतुः) समस्त बुद्धियुक्त वा बुद्धि देनेवाले (असि) हैं, इसीसे आप सब विद्वानोंके सेवने योग्यहैं ॥ १ ॥ द्वितीय (सोम) सब औषधियोंका गुण दाता सोम औषधि (त्वम्) यह औषधियों में उत्तम (सत्पतिः) ठीक २ पथ्य

करने वाले जनों की पालना करनेहारा है (उत) और (त्वम्) यह सोम (वृत्रहा) मेघ के समान दोषों का नाशक (राजा) रोगों के विनाशक करने के गुणों का प्रकाश करने वाला है, वा जिस कारण (त्वम्) यह (भद्रः) सेवने के योग्य वा (क्रतुः) उत्तम बुद्धि का हेतु है, इसीसे वह सब विद्वानों के सेवने के योग्य है। इस मंत्रमें श्लेषालंकार है परमेश्वर विद्वान् सोमलता आदि ओषधियों का समूह ये समस्त ऐश्वर्य्य को प्रकाश करने, श्रेष्ठोंकी रक्षा करने और उनके स्वामी दुःख का विनाश करने और विज्ञानके देने हारे और कल्याणकारी हैं ऐसा अच्छीप्रकार जानके सबको इनका सेवन करना योग्य है ॥

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥

ऋ० १ । ६ । २० । ८

पदार्थः—हे (सोम) सबके मित्र वा मित्रता देनेवाला (त्वम्) आप वा यह औषधि समूह (विश्वतः) समस्त (अघायतः) अपने को दोष

की इच्छा करतेहुए वा दोषकारी से (नः) हम लोगों की (रक्ष) रक्षा कीजिये वा यह औषधि राज रक्षा करता है,हे (राजन्) सबकी रक्षा का प्रकाश करने वाले (त्वावतः) तुम्हारे समान पुरुष का (सखा) कोई मित्र (न)न (रिष्येत) बिनाश को प्राप्त होवे वा सबका रक्षक जो औषधि गण इसके समान औषधि का सेवने वाला पुरुष विनाश को न प्राप्त होवे।

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है— मनुष्यों को इस प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करके उत्तम यत्न करना चाहिये कि, जिससे धर्म के छोड़ने और अधर्म के ग्रहण करने को इच्छाभी न उठे,धर्म और अधर्म की प्रवृत्ति में मनकी इच्छाही कारण है, उसकी प्रवृत्ति और उसके रोकने से कभी धर्म का त्याग अधर्म का ग्रहण उत्पन्न नहीं॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ २१॥

ऋ० १।२।७।२०।

पदार्थः—(सूरयः) धार्मिक बुद्धिमान पुरुषार्थी

विद्वान् लोग। (दिवि) सूर्य आदिके प्रकाश में (आततम्) फैलेहुए (चक्षुरिव)नेत्रों के समान जो (विष्णोः) व्यापक आनन्दस्वरूप परमेश्वर का विस्तृत (परमम्) उत्तम से उत्तम (पदम्) चाहने, जानने और प्राप्त होने योग्य उक्त वा वक्ष्यमाण पद हैं (तत्) उसको (सदा) सब काल में विमल शुद्ध ज्ञान के द्वारा अपने आत्मा में (पश्यन्ति) देखते हैं ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्राणी सूर्य्य के प्रकाश में शुद्धनेत्रों से मूर्तिमान् पदार्थों को देखतेहैं। वैसेही विद्वान् लोग निर्मल विज्ञान से विद्या वा श्रेष्ठ विचारयुक्त शुद्ध अपने आत्मा में जगदीश्वर को सब आनन्दों से युक्त और प्राप्त होने योग्य मोक्ष पद को देख कर प्राप्त होते हैं, इसकी प्राप्ति के विना कोई मनुष्य सब सुखों को प्राप्त होनेमें समर्थ नहीं होसकता, इससे इसकी प्राप्ति के निमित्त सब मनुष्योंको निरन्तर यत्न करना चाहिये, इसमंत्र में (परमम्) (पदम्) इनपदोंके अर्थमें युरोपियन (विलसन साहब ने कहा है (क),इनका

अर्थ स्वर्ग नहीं होसकता, यह उनकी भ्रांति है क्योंकि परम पदका अर्थ स्वर्गही है)।

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे। युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मामर्त्यस्य मायिनः ॥ २२

ऋ० १।३।१८।२।

पदार्थः—हे धार्म्मिकमनुष्यो! (वः) तुम्हारे (आयुधा) आग्नेय आदि अस्त्र और तलवार, धनुष, बाण, भुसुंडी, बन्दूक, शतघ्नी, तोप आदि शस्त्र अस्त्र (पराणुदे) शत्रुओंको व्यथा करने वाले युद्ध (उत) और (प्रतिष्कभे) रोकने बाँधने और मारने रूप कर्म्मोंके लिये(स्थिरा) स्थिर दृढ चिरस्थायी (वीळू) दृढ बड़े २ उत्तम युक्त (तविषी) प्रशस्त सेना (पनीयसी) अतिशय करके स्तुति करने योग्य वा व्यवहार को सिद्ध करनेवाली (अस्तु) हो और पूर्वोक्त पदार्थ (मायिनः) कपटआदि अधर्माचरण युक्त (मर्त्य[illegible]) दुष्टमनुष्योंके (मा) कभी मतहों।

भा[illegible]:—[illegible]—धार्मिक मनुष्यही परमात्मा के

कृपापात्रहोकर सदा विजय को प्राप्त होते हैं दुष्ट नहीं। परमात्मा भी धार्मिक मनुष्योंही को आशीर्वाद देता है, पापियोंको नहीं। पुण्यात्मा मनुष्यों को उचित है कि, उत्तम २ शस्त्र अस्त्र रचकर उनके फेंकनेका अभ्यास करके सेनाको उत्तम शिक्षा देकर शत्रुओंका निरोध वा पराजय करके न्याय से मनुष्यों की निरंतर रक्षा करनी चाहिये।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ २३

ऋ० १।२।७।१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यलोगों तुम जो (इन्द्रस्य) जीवका (युज्यः) अर्थात् जो अपनी व्याप्तिसे पदार्थोंमे संयोग करने वाले दिशा काल और आकाश हैं उनमें व्यापक होके रमनेवा (सखा) सर्वसुखोंके संपादन करनेसे मित्रहै (यतः) जिस से जीव (व्रतानि) सत्यबोलनें और न्याय करनेआदि उत्तम कर्मोंको (पस्पशे) प्राप्तहोताहै उस (विष्णोः) सर्वत्र व्यापक शुद्ध औ [illegible]स्वभाव सिद्ध अनंत समर्थ्य वाले परमेश्वरके (कर्माणि)

जोकि, जगत्की रचना, पालना न्याय और प्रयत्न करना आदि कर्म हैं उनको तुमलोग (पश्यत) अच्छेप्रकार विदित करो ॥

भावार्थः-जिसकारण सबके मित्र जगदीश्वर ने पृथिवी आदि लोक तथा जीवोंके साधन सहित शरीर रचे हैं । इसीसे सब प्राणी अपने२ कार्योंके करने को समर्थ होते हैं ॥

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि । अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥

२४ ऋ० ५ । ३ । २१ । २५॥

पदार्थः-हे (मघवन्) बहुधनयुक्त राजा (सुवेदाः) धर्मसे उत्पन्न किये हुए ऐश्वर्य युक्त आप (नः) हमारे (अमित्रान्) शत्रुओं को (पराणुदस्व) प्रेरो, हमारे लिये (वसू) धनको (कृधि) सिद्ध करो (महाधने) बड़े वा बहुतधन जिसमें प्राप्त होते हैं उस संग्राममें (अस्माकम्) हमारे (सखीनाम्) सर्वमित्रोंके (अविता) रक्षाकरने वाले (बोधि) जानिये और (वृधः) बढने वाले (भव) हूजिये ॥

भावार्थः—हे राजा! आप धार्मिक, शूर जनोंका सत्कार कर उनको शिक्षा देकर युद्धविद्या में कुशल कर, डाकू आदि दुष्टोंको निवृत्तकर सर्वोपकारी मनुष्यों के रक्षाकरने वाले हूजिये ॥

शंनो॒ भगः॒ शमु॑ नः॒ शंसो॑अस्तु॒ शं नः॒ पुर॑न्धिः॒ शमु॑ सन्तु॒ राय॑ः। शं नः॑ स॒त्यस्य॑ सु॒यम॑स्य॒ शंसः॒ शंनो॑ अर्य॒मा पु॑रु॒जा॒तो अ॑स्तु॥ २५ ऋ० ५। ३। २८। २

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (नः) हमलोगों के लिये (भगः) ऐश्वर्य (शम्) सुख करनेवाला (नः) हमलोगोंके लिये (शंसः) शिक्षा वा प्रशंसा (शम्) सुख करनेवाली (उ) और (पुरन्धिः) बहुत पदार्थ जिसमें रक्खे जातेहैं, वह आकाश (शम्) सुख करनेवाला (अस्तु) हो (नः) हम लोगों के लिये (रायः) धन (शम्) सुख करनेवाले (उ) ही (सन्तु) हों (नः) हम लोगों के लिये (सत्यस्य) यथार्थ धर्म वा परमेश्वरकी (सुयमस्य) सुन्दर नियम से प्राप्तकरने योग्य व्यवहारकी (शंसः) प्रशंसा

(शं) सुखदेने वाली और (पुरुजातः) बहुत मनुष्योंमें प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायकारी (नः) हमारे लिये (शम्) आनन्द देनेवाला (अस्तु) होवे, वैसा हमलोग प्रयत्न करें ।

भावार्थः—हे मनुष्यो! तुम जैसे ऐश्वर्य्य पुण्य, कीर्त्ति अवकाश, धन धर्मयोग और न्यायाधीश सुख करनेवाले हो वैसा अनुष्ठान करो ॥

त्वम॑सि प्र॒शस्यो॑ वि॒दथे॑षु सहन्त्य ।
अग्ने॑ र॒थीर॑ध्व॒राणा॑म् ॥ २६ ॥

ऋ० ५ । ८ । ३५ । २॥

पदार्थः—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर (त्वम्) आपही (विदथेषु) यज्ञ और युद्धों में (प्रशस्यः) स्तुति करने के योग्य और (सहन्त्य) शत्रुओं के समूहों के घातक और (अध्वराणाम्) यज्ञ और युद्धों में (रथीः) जीतनेवाले हों ।

भावार्थः—हे परमेश्वर! आपही हमारे शत्रुओं के योधाओं को जीतनेवाले, तथा स्तुति करने योग्य हो ।

तन्न॒ इन्द्रो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निराप॒

ओषधीर्वनिनो जुषन्त । शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २७ ऋ० ५ । ३ । २७ । २५ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो (वनिनः) किरणवान् (इन्द्रः) बिजली के समान राजा (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) मित्रजन (अग्निः) पावक (आपः) जल और (ओषधीः) यवादि ओषधी (नः) हमारे लिये (तत्) उस सुखको (जुषन्तः) सेवते हैं, जिससे (यूयं) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हमलोगों की (सदा) सर्व देव (पात) रक्षाकरो, उन तुम (मरुताम्) लोगों के (उपस्थे) समीप (शर्मन्) सुखमें हमलोग स्थिर (स्याम) हों ।

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि—विद्वानों के सङ्गम से जैसे विजुली आदि पदार्थ अपने कामों को सेवें, वैसे हमलोग अनुष्ठान करें ।

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशा न

ओजसा । इन्द्रं चोष्कूयसे वसु ॥२८॥ ऋ० ५।८।१७।४१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ईश्वर (ऋषिः) सर्वज्ञ (पूर्वजाः) सबके पूर्वजों के (एकः) एक अद्वितीय (ईशानः) ईश्वरता करनेहारे और (ओजसा) अनन्त पराक्रम से युक्तहो और (वसु) सब धनके (हि) निश्चय से (चोष्कूयसे) देनेवाले हो ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर! आपही आदि से सब को अपनी कृपा करके सब धनआदि के देनेवाले तथा आज्ञापालनों पर कृपादृष्टि करनेवाले हो ॥

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत। गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ २९ ॥ ऋ० । ६ । ४ । ९ । १२ ॥

पदार्थः—हे भगवन् (नावयै) धर्म से विपरीत चलनेवाले पापी हिंसक दुष्टात्मा को (इह) इस संसार में (भद्रम्) सुख (न)

मत (रक्षस्विने) दीजिये (उत) और अधर्मी के (उपया) समीप रहनेवाले अथवा उसके सहायक कोभी सुख (न) न हो (गवे) शमदमादि युक्त इन्द्रियाँ (च) और (धेनवे) दूध देनेवाली गौ आदि (च) और (वीराय) वीरपुत्र और शूरवीर भृत्यको (सर्वस्यते) अन्नाद्यैश्वर्ययुक्त (भद्रम्) सुख (अनेहसः) नाशरहित निरुपद्रव अर्थात् स्थिर सुख हो, हे (व ऊतयः सु ऊतयो व ऊतयः) सर्व रक्षकेश्वर आप रक्षा आदि पदार्थों के लिये भली प्रकार रक्षा कीजिये ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर! धर्म से विपरीत चलानेवाले और उसके सहायक को इस संसार में कभी सुख न हो और हमारी शमदमादि युक्त इन्द्रियां, गौ आदि, वीरपुत्र और शूरवीर भृत्यको सुखहो तथा हमारे रक्षा करने योग्य पदार्थों की रक्षाकीजिये ।

वसुर्वसुपतिर्हिकमस्यग्ने विभावसुः। स्यामं ते सुमतावपि॥ ३० ऋ० ६ । ३। ॥ ४० ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाश स्वरूप पर· मात्मन् (वसुः) सबको अपनें में वसानेवाले और सबमें आप वसनेवाले और (वसुपतिः) पृथिव्यादि वास हेतु भूतोंके पति और (कमासि) सुख स्वरूप और (विभावसु) सत्य स्वप्रका. शक धनमय (स्याम) हो, ऐसे जो आप उन (ते) आपकी ही (सुमतौ) अत्यन्तोत्कृष्ट ज्ञान और आपकी प्रीति में हमलोग (अपि) निश्चय से सदा स्थिर रहें ।

भावार्थ—हेस्वप्रकाशस्वरूप वसुपति स्वप्रकाश सुख स्वरूप हम सब लोग आपके ही अत्यन्तो· त्कृष्ट ज्ञानमें स्थिर होकर वर्तें और आपकी आज्ञा- ओंका पालन करें ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ॥ इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ ३१ ऋ० १ । ७ । ६ । १ ।

पदार्थः—जो (वैश्वानरः) समस्त जीवोंको यथा योग्य व्यवहारों में वर्त्ताने वाला ईश्वर वा जठराग्नि (इतः) कारण से

(जातः) प्रसिद्धहुए (इदम्) इस प्रत्यक्ष (कम्) सुखको (विश्वम्) वा समस्त जगत् को (विचष्टे) विशेष भावसे दिखलाता है और जो (सूर्येण) प्राण वा सूर्यलोक के साथ (यतते) यत्न करनेवालाहोता है वा जो (भुवनानाम्) लोकों का (अभिश्रीः) सब प्रकारसे धनहै तथा जिस भौतिक अग्निसे सब प्रकार का धनहोता है वा (राजा) जो न्यायाधीश सबका अधिपति है तथा प्रकाशमान बिजुलीरूप अग्नि है उस (वैश्वानरस्य) समस्त पदार्थ को देने वाले ईश्वर वा भौतिक अग्नि की (सुमति) श्रेष्ठ मति में अर्थात् जो कि अत्यन्त उत्तम अनुपम ईश्वर की प्रसिद्ध की हुई मति वा भौतिक अग्निसे अतीव प्रसिद्धहुई मति है उसमें (हि) ही (वयम्) हमलोग (स्याम) स्थिर हों ।

भावार्थः--इस मंत्र में श्लेषालं० हे मनुष्यो जो सबसे बड़ा व्याप्त होकर सब जगत्को प्रकाशित करता है, उसी उत्तम गुणोंसे प्रसिद्ध उसकी आज्ञामें नित्य प्रवृत्तहोओ, तथा जो सूर्य्य आदि को प्रकाश करने वाला अग्नि है उसकी विद्याकी

सिद्धि में भी प्रवृत्तहोओ इसके विना किसी मनुष्यको पूर्ण धन नहीं हो सकते ॥

न यस्य॑ दे॒वा दे॒वता॒ न मर्त्ता॒ आप॑श्च॒ न शव॑सो॒ अन्त॑मा॒पुः । स प्रि॒रिक्वा॒ त्वक्ष॑सा॒ क्ष्मो दि॒वश्च॑ म॒रुत्वा॑न्नो भव॒त्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ ३२ ऋ० १ । १० । १५ ।

पदार्थः—(यस्य) जिस परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर के (शवसः) वलकी (अन्तम्) अवधि को (देवता) दिव्य उत्तम जनों में (देवः) विद्वान् लोग (न) नहीं (मर्त्ताः) साधारण मनुष्य (न) नहीं (च न) तथा (आपः) अन्तरिक्ष वा प्राण भी (आयुः) नहीं पाते जो (त्वक्षसा) अपने वलरूप सामर्थ्य से (क्ष्मः) पृथिवी (दिवः) सूर्य्यलोक तथा (च) और लोकों को (प्ररिक्वा) रचके व्याप्त होरहा है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी प्रजाको प्रशंसित करनेवाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः) हमलोगों के (ऊती) रक्षादि व्यहार के लिये निरन्तर उद्यत (भवतु) होवे ॥

भावार्थः—क्या अनन्त गुण कर्म स्वभाववाले उस परमेश्वरका पार कोई लेसकता है कि, जो अपने सामर्थ्य से ही प्रकृति रूप अति सूक्ष्म सनातन कारण से सब पदार्थों को स्थूलरूप उत्पन्न कर उनकी पालना और प्रलय के समय सबका विनाशकरता है वह सबके उपासना करने के योग्य क्यों न होवे।

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥ ३३ ऋ॰ १।७।७।१॥

पदार्थः—जिस (जात वेदसे) उत्पन्न हुए चराचर जगत्को जानने और प्राप्त होनेवाले वा उत्पन्न हुए सर्व पदार्थों में विद्यमान जगदीश्वर के लिये हमलोग (सोमम्) समस्त ऐश्वर्य युक्त सांसारिक पदार्थों का (सुनवाम) निचोड़ करते हैं अर्थात् यथा योग्य सबको वर्त्तते हैं और जो (अरातीयतः) अधर्मियों के समान वर्त्ताव रखनेवाले दुष्टजनके (वेदः) धनको (निद-

हाति, निरन्तर नष्टकरता है (सः) वह (अग्निः) विज्ञान स्वरूप जगदीश्वर जैसे मल्लाह (नावेव) नौका से (सिन्धुम्) नदी वा समुद्र के पार पहुंचाता है वैसे (नः) हमलोगों को (अति) अत्यन्त (दुर्गाणि) दुर्गति और (अति दुरिता) अतीव दुःख देनेवाले (विश्वा) समस्त पापाचरणों के (पर्षत्) पारकरता है वही इस जगत् में खोजने के योग्य है।

भावार्थः—इस मंत्रमें उपमालं०—जैसे मल्लाह कठिन वड़े समुद्रों में अत्यन्त विस्तारवाली नावोंसे मनुष्यादि को सुखसे पारपहुंचाते हैं वैसेही अच्छे प्रकार उपासना किया हुआ जगदीश्वर दुःखरूपी वडेभारी समुद्र में स्थित मनुष्यों को विज्ञानादि दानों से उसके पारपहुंचाता है इस लिये उसकी उपासना करने हारा ही मनुष्य शत्रुओं को हराके उत्तम वीरता के आनन्द को प्राप्त होसकता और की क्या सामर्थ्य है॥

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा। चम्रीषो न

शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भव-
त्विन्द्र ऊती ३४ ऋ० १।७।१०।१२

पदार्थः—(चर्षणीषः) जो अपनी सेनासे शत्रुओं की सेनाओं के मारनेहारों के (न) समान स्त (वज्रभृत्) अतिकराल शस्त्रों को बांधने (दस्युहा) डांकू चोर लम्पट लवाड़ आदि दुष्टोंको मारने (भीमः) उनको डर और (उग्रः) अति कठिनदण्ड देने (सहस्रचेताः) हजारहों अच्छे प्रकारके ज्ञान प्रगट करनेवाला (शतनीथः) जिसके सैकड़ों यथायोग्य व्यवहारों के वर्त्ताव हैं (पाञ्चजन्यः) जो सब विद्याओं से युक्त पढाने उपदेश करने राज्य सम्बन्धीसभा सेना और सब अधिकारियों के अधिष्ठाताओं में उत्तमता से हुआ (मरुत्वान्) और अपनी सेनामें उत्तम वीरों को रखनेवाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् सेना आदि का अधीश (ऋभ्वा) अतीव (शवसा) वलवान सेनासे शत्रुओं को अच्छे प्रकार प्राप्तहोता है (सः) वह (नः) हमलोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के लिये (भवतु) होवे ।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—मनुष्यों को जानना चाहिये कि कोई मनुष्य धनुर्वेद के विशेष ज्ञान और उसको यथायोग्य व्यवहारोंमे वर्त्तने और शत्रुओंके मारने में भयके देने वाले तीव्र अगाध सामर्थ्य और प्रबल बढ़ी हुई सेना के विना सेनापति नहीं होसकता। और ऐसे हुए बिना शत्रुओं का पराजय और प्रजा का पालन होसके यह भी सम्भव नहीं ऐसा जाने॥

सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो॥ स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥३५॥

ऋ० १।१।३१।९।

पदार्थः—हे (शतक्रतो) असंख्यात कामों को सिद्ध करने वाले अनन्त विज्ञान युक्त जगदीश्वर जिस (त्वा) आपकी (स्वाध्यः) अच्छे प्रकार ध्यान करने वाले हम लोग (स्तवाम) नित्य स्तुति करें। (सः) सो आप (गोभिः) इन्द्रिय पृथिवी विद्या का प्रकाश और पशु तथा (अश्वैः) शीघ्र चलने और चलाने वाले अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़े हाथी आदि से (नः)

हमारी (कामम्) कामनाओं को (आपृण) सब ओर से पूरण कीजिये ॥

भावार्थः—ईश्वर में यह सामर्थ्य सदैव रहता है कि पुरुषार्थी धर्मात्मा मनुष्यों को उन के कर्मों के अनुसार सब कामनाओं से पूरण करना तथा जो संसार में परम उत्तम २ पदार्थों का उत्पादन तथा धारण करके सब प्राणियों को सुख युक्त करता है, इस से सब मनुष्यों को उसी परमेश्वर की नित्य उपासना करनी चाहिये ॥ ६ ॥ ऋतुओं के संपादक जो कि सूर्य्य और वायु आदि पदार्थ हैं उनके यथायोग्य प्रतिपादन से इस पन्द्रहवें सूक्त के अर्थ के साथ पूर्व सोलहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति समझनी चाहिये इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेश वासी अध्यापक विलसन आदि ने विपरीत वर्णन किया है ॥

सोमं गीर्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविदः। सुमृडीको न आ विश ३८

ऋ० १। ६। २१। ११।

पदार्थः—हे (सोम) जानने योग्य गुण कर्म स्वभाव युक्त परमेश्वर जिस कारण (समृडीकः) अच्छे सुख के करने वाले वैद्य आप और सोम आदि ओषधि गण (नः) हम लोगों को (आ) (विश) प्राप्तहों इससे (त्वा) आपको और उस ओषधि गण को (वचोविदः) जानने योग्य पदार्थों को जानते हुए (वयम्) हम (गीर्भिः) विद्या से शुद्ध की हुई वाणियों से नित्य (वर्द्धयामः) वढाते हैं।

भावार्थः—इस मंत्रमें श्लेषालं०—ईश्वरविद्वान् और ओषधि समूह के तुल्य प्राणियों को कोई सुख करने वाला नहीं है इससे उत्तम शिक्षा और विद्याऽध्ययन से उक्त पदार्थों के बोध की वृद्धि करके मनुष्यों को नित्य वैसे ही आचरण करना चाहिये।

सोमं रारन्धि नो हृदि गावो न यवसे-ष्वा। मर्य इव स्व ओक्ये॥

३७ ऋ० १। ६। २१। १३॥

पदार्थः—हे (सोम) परमेश्वर जिस कारण

आप (नः) हमलोगों के (हृदि) हृदय में (न) जैसे (यवमेषु) खाने योग्य घास आदि पदार्थों में (गावः) गौरमती है वैसे वा जैसे (स्वे) अपने (ओक्ये) घर में (मर्य्य इव) मनुष्य विरमता है वैसे (आ) अच्छे प्रकार (रारन्धि) रमिये वा ओषधि समूह उक्त प्रकार से रमे इस से सबके सेवने योग्य आप वा यह है ।

भावार्थः—इस मंत्रमें श्लेषा और दो उपमा-लंकार है—हे जगदीश्वर जैसे प्रत्यक्षतासे गौ और मनुष्य अपने भोजन करने योग्य पदार्थ वा स्थान में उत्साह पूर्वक अपना वर्त्ताव वर्त्ततेहैं, वैसे हम लोगों के आत्मामें प्रकाशित हूजिये जैसे पृथिवी आदि कार्य्य पदार्थों में प्रत्यक्ष सूर्य्य की किरणें प्रकाश मान होती हैं वैसे, हमलोगों के आत्मा में प्रकाशमान हूजिये इस मंत्रमें असंभव होने से विद्वान् का ग्रहण नहीं किया ।

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ।

३८ ऋ० १ । ६ । २१ । १२ ॥

पदार्थः—हे (सोम) परमेश्वर वा विद्वान् जिस कारण आप वा यह उत्तमौषध (नः) हमलोगों के (गयस्फानः) प्राणों के बढाने वा (अमीवहा) अविद्या आदि दोषों तथा ज्वर आदि दुःखों के विनाश करने वा (वसुवित्) द्रव्य आदि पदार्थों के ज्ञान कराने वा (सुमित्रः) जिनसे उत्तम कर्मों के करने वाले मित्र होते हैं वैसे (पुष्टिवर्द्धनः) शरीर और आत्मा की पुष्टि को बढानेवाले (भव) हूजिये वा यह ओषधि समूह हमलोगों को यथा योग्य उक्त गुण देनेवाला होवे इस से आप और यह हमलोगों के सेवने योग्य हैं ॥

भावार्थः—इसमंत्रमें श्लेषालं०—प्राणियों को ईश्वर और ओषधियों के सेवन और विद्वानोंके संग के विना रोग नाश बल वृद्धि पदार्थों का ज्ञान धनकी प्राप्ति तथा मित्रमिलाप नहीं होसकता इससे उक्त पदार्थों का यथायोग्य आश्रय और सेवा सबको करनी चाहिये ॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥३९॥ ऋ० १।७।५।६।

पदार्थः—हे (विश्वतो मुख) सब में व्याप्त होने और अन्तर्यामी पनसे सबको शिक्षा देने-वाले जगदीश्वर जिस कारण (त्वं हि) आपही (विश्वतः) सब ओर से (परि भूः) सबके उपर विराजमान (असि) हैं इससे (नः) हमलोगों के (अघम्) दुष्ट स्वभाव संगरूप पाप को (अप, शोशुचत्) दूर कराइये।

भावार्थः—सत्य २ प्रेमभाव से प्रार्थना को प्राप्त हुआ अन्तर्यामी जगदीश्वर मनुष्यों के आत्मामें जो सत्य २ उपदेश से इन मनुष्यों को पापसे अलगकर शुभगुण कर्म और स्वभाव में प्रवृत्त करता है इससे यह नित्य उपासना करने योग्यहै

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम्। ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्

४० ऋ० १।७।३।३।

पदार्थः—हे मनुष्यों जो (प्रथमम्) समस्त उत्पन्न जगत् के पहिले वर्त्तमान (यज्ञसाधम्) विज्ञान योगाभ्यासादि यज्ञों से जाना

जाता (ऋञ्जसानम्) विवेक आदि साधनों से अच्छे प्रकार सिद्ध कियाजाता (आहुतम्) विद्वानों से सत्कार को प्राप्त (आरीः) प्राप्त होने योग्य (विशः) प्रजा जनों और (भरतम्) धारणा वा पुष्टि करने वाला (सृप्रदानुम्) जिससे कि ज्ञान देना बनता है उस (ऊर्जः) कारण रूप पवन से (पुत्रं) प्रसिद्ध हुए प्राण को उत्पन्न करने और (द्रविणोदाम्) धन आदि पदार्थों के देने वाले (अग्निम्) जगदीश्वर को (देवाः) विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं (तम्) उस परमेश्वर की तुम नित्य (ईडत) स्तुति करो ॥

भावार्थः—हे जिज्ञासु अर्थात् परमेश्वर का विज्ञान चाहने वाले मनुष्यों के तुम जिस ईश्वरने सब जीवों के लिये सब सृष्टियों को उत्पन्न कर के प्राप्त की है वा जिसने सृष्टि धारण करने हारा पवन और सूर्य्य रचा है उसको छोड़के अन्य किसीकी कभी ईश्वरभाव से उपासना मतकरो।

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्। स विश्वस्य

करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४१ ऋ० १।७।९।७।

पदार्थः—जिसको (ऊतयः) रक्षा आदि व्यवहार सेवन करें (तम्) उस सेना आदि के अधिपति को (शूरसातौ) जिसमें शूरोंका सेवन होता है उस संग्राम में (क्षितयः) मनुष्य (त्राम्) अपनी रक्षा करनेवाला (कृणवत) करें जो (क्षेमस्य) अत्यन्त कुशलता का करनेवाला है (तम्) उसको अपनी पालना करनेहारा किये हुए उक्त संग्राम में (रणयन्) रटें, अर्थात् वार वार उसी की विनती करें जो (एकः) अकेला सभाध्यक्ष (विश्वस्य) समस्त (करुणस्य) करुणारूपी काम को करने में (ईशे) समर्थ है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी सेनामें (शंसित्) वीरोंका रखने वा (इन्द्रः) सेना आदि की रक्षा करनेहारा (नः) हमलोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (भवतु) हो ।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि,जो अकेला भी अनेक योधाओंको जीतता है उसका उत्साह संग्राम और व्यवहारों में अच्छे प्रकार चढावे,

अच्छे उत्साह से वीरों में जैसी शूरता होती है वैसी निश्चय है कि, और प्रकार में नहीं आती ११

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् । विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ४२ ऋ० १।७।३।२॥

पदार्थः—मनुष्योंको जो (पूर्वया) प्राचीन (निविदा) वेद वाणी (कव्यदा) जिससे कि, कविताई आदि कर्मों का विस्तार करें उस से (मनूनाम्) विचारशील पुरुषों के समीप (आयो) सनातन कारण से (इमः) इन प्रत्यक्ष (प्रजा) उत्पन्न होने वाले प्रजाजनों को (अजनयन्) उत्पन्न करता है वा (विवस्वता) (चक्षसा) सब पदार्थों को दिखाने वाले सूर्य्य से (द्याम्) प्रकाश (अपः) जल (च) पृथिवी वा ओषधि आदि पदार्थों तथा जिस (द्रविणोदाम्) धन देने वाले (अग्निम्) परमेश्वर को (देवाः) आप्त विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते हैं (सः) वह नित्य उपासना करने योग्य है।

भावार्थः—ज्ञानवान् अर्थात् जो चेतनता युक्तहै उसके विना उत्पन्न किये उछ जड़ पदार्थ कार्य्य करनेवाला आप नहीं उत्पन्न होसकता इससे समस्त जगत् के उत्पन्न करनेहारे सर्व-शक्तिमान् जगदीश्वरको सब मनुष्य मानें अर्थात् तृण मात्र जो आपसे नहीं उत्पन्न होसकता तो यह कार्य्य जगत् कैसे उत्पन्न होसके इस से इसको उत्पन्न करने वाला जो चेतन रूप है वही परमेश्वर है।

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माक मंशमुदवा भरे भरे। अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्यारुज॥४३ ऋ० १।७।१४।४॥

पदार्थः—हे(इन्द्र)शत्रुओंके दलको विदीर्णकरने वाले सेना आदि के अधीश तुम (भरे भरे) प्रत्येक संग्राम में (अस्माकम्) हम लोगों के (वृतम्) स्वीकार करनेयोग्य (अंशम्) सेवा विभाग को (अव) रक्खो, चाहो जानो प्राप्त होओ, अपने में रमाओ, मांगो,प्रकाशित करो,

उससे आनन्दित होनेआदि क्रियाओंसे स्वीकार करो वा भोजन वस्त्र धन यान कोषको बांट सेओ तथा (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (वरिवः) अपनः सेवन (सुगम्) सुगम (कृधि) करो,हे (मघवन्) प्रशंसित वलवाले तुम (वृष्ण्या) शस्त्र वर्षाने वालों की शस्त्र वृष्टि के लिये हित रूप अपनी सेना से (शत्रूणाम्) शत्रुओं की सेनाओं को (प्ररुज) अच्छी प्रकार काटो और ऐसे साथी (त्वयायुजा) जो आप उनके साथ (वयम्) युद्ध करने वाले हम लोग शत्रुओं के वलों को (उत्, जयेम) उत्तम प्रकार से जीतैं।

भावार्थः—राज पुरुष जब २ युद्ध करने को प्रवृत्त होवें, तब २ धनु,शस्त्र, यान, कोश, सेना आदि सामग्री को पूरी कर और प्रशंसित सेना के अधीश से रक्षाको प्राप्त होकर प्रशंसित विचार और युक्ति से शत्रुओं के साथ युद्ध कर उन की सेनाओं को सदा जीतें ऐसे पुरुषार्थ के बिना किये किसीकी जीत होने योग्य नहीं,इससे इस वर्त्ताव को सदा वर्त्तें ॥

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पति-

यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् । इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४४ ॥

ऋ० । १ । ७ । १२ । ५ ॥

पदार्थः-(यः) जो उत्तम दानशील (प्रथमः) सब को विख्यात करने वाला (इन्द्रः) इन्द्रियों से युक्त जीव (ब्रह्मणे) चारों वेदों के जानने वाले के लिये (गाः) पृथिवी इन्द्रियों और प्रकाश युक्त लोकों को (अविन्दत्) प्राप्त होता वा (यः) जो शूरता आदि गुण वाला वीर (दस्यून्) हठ से औरों का धन हरने वालों को (अधरान्) नीचता को प्राप्त करता हुआ (अवातिरत्) अधोगति को पहुंचाता वा (यः) जो सेनाधिपति (विश्वस्य) समग्र (जगतः) जङ्गम रूप (प्राणतः) जीवते जीव समूह का (पति) अधिपति अर्थात् स्वामी हो उस (मरुत्वन्तम्) अपने समीप पढ़ाने वालों को रखने वाले सभाध्यक्ष को हम लोग (सख्याय) मित्रपन के लिये (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥

भावार्थः—पुरुषार्थ के विना विद्या अन्न और धन की प्राप्ति तथा शत्रुओं का पराजय नहीं होसकता, जो धार्मिक सेनाध्यक्ष सुहृद्भाव से अपने प्राण के समान सबको प्रसन्न करताहै, उस पुरुष को निश्चय है कि, कभी दुःख नहीं होता इससे उक्त विषय का आचरण सदा करना चाहिये ॥

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ॥ यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ ४५ ॥

ऋ० । १ । ८ । ५ । २ ॥

पदार्थः--हे (रुद्र) दुष्ट शत्रुओं को रुलाने हारे राजन् जो हम (क्षयद्वीराय) विनाश किये शत्रु सेनास्थ वीर जिसने उस (ते) आप के लिये (नमसा) अन्न वा सत्कार से (विधेम) विधान करें अर्थात् सेवा करें उन (नः) हम लोगों को तुम (मृड) सुखी कर और (नः) हम लोगों के लिये (मयः) सुखी (कृधि) कीजिये हे (रुद्र) न्यायाधीश (मनुः) मन-

न शील (पिता) पिता के समान आप (यत) जो रोगों का (शम्) निवारण (च) ज्ञान (योः) दुःखों का अलग करना (च) और गुणों की प्राप्ति का (आयेजे) सब प्रकार सङ्ग कराते हो (तत्) उसको (अश्याम) प्राप्त होवे (उत) वेही हम लोग (तव) तुम्हारी (प्रणीतिषु) उत्तम नीतियों में प्रवृत्त होकर निरन्तर सुखी होवें ॥

भावार्थः—राज पुरुषो को योग्य है कि, स्वयं सुखी होकर सब प्रजाओं को सुखी करें इस काम में आलस्य कभी न करें और प्रजाजन राजनीति के नियम में वर्त्त के राज पुरुषों को सदा प्रसन्न रक्खें ॥

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा । पुरः सदः शर्म्मसदो न वीरा अनवद्यापतिं जुष्टेव नारी ॥ ४६ ॥

ऋ० १।५।१९।३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो ! तुम लोग (यः) जो

(देवः) अच्छे सुखों का देनेवाला परमेश्वर वा विद्वान् (पृथिवीम्) भूमि के (न) समान (विश्वधायाः) विश्व को धारण करने वाला (हितमित्रः) मित्रों को धारण किये हुए (राजा) सभा आदि के अध्यक्ष के (न) समान (उपक्षेति) जानता वा निवास करता है, तथा (पुरःसदः) प्रथम शत्रुओं को मारने वा युद्ध के जानने (शर्मसदः) सुख में स्थिर होने और (वीराः) युद्ध में शत्रुओं के फेंकने वाले के (न) समान तथा (अनवद्या) विद्या सौंदर्य्यादि शुद्ध गुण युक्त (नारी) नर की स्त्री (पतिजुष्टेव) जोकि, पति की सेवा करने वाली उसके समान सुखों में निवास कराता है, उसको सदा सेवन करो ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—मनुष्य लोग परमेश्वर वा विद्वानों के साथ प्रेम प्रीति से वर्त्तने के विना सब बल वा सुखोंको प्राप्त नहीं होसकते इससे इन्हीं के साथ सदा प्रीति करें॥

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।

विश्वं मन्यान्निविशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥ ४७ ॥

ऋ० ७।८।१२।२।

पदार्थः—हे सर्वाभिरक्षकेश्वर! (सत्योक्तिः) आपकी सत्य आज्ञा जिसका (मा) हमने अनुष्ठान किया है (सा) वह (विश्वतः) सब संसार से अर्थात् सर्वथा पालन और सर्व दुष्टकामों से (नः) हमको (परिपातु) सदा पृथक् रक्खो (च) और (द्यावा) दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करें (यत्र) जिस दिव्य सृष्टिमें (अहानि) सूर्य्यादिकों को दिवस आदि के होने के निमित्त (ततनत) आपनेही विस्तारे हैं वहां भी हमारा सर्वोपद्रवों से रक्षण करो (विश्वमन्य) आपसे अन्य विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ सें प्रलय में (निविशते) प्रवेश करता है और (यदेजाति) जिस समय यह जगत् आपकी सामर्थ से चलित होकर उत्पन्न होता है उस समयमें भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षाकरो और (विश्वा-

हापो विश्वाहा) और जो २ विश्वका दुःख देने· वालाहो उसकोआप नष्ट करदीजिये और(सूर्य्यः) सूर्य्य की तरह हमारे हृदय में कृपा करके(उदिति) प्रकाशित हूजिये जिससेहमारी अविद्या नष्टहों ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप सृष्टि और प्रलय काल में हमको सब दुःखों से पृथक् रखके दिव्य सुख दीजिये और जो विश्व का दुःख देने वाला हो उसको आप नष्ट कर दीजिये और कृपा कर के हमारे हृदय में सूर्य्य की तरह प्रकाशित होकर हमारी अविद्या को नष्ट कर दीजिये ॥

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे । शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४८ ॥

ऋ० १ । ६ । ३२ । १३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने)जगदीश्वर वा विद्वान् जिस कारण आप (अध्वरे)न छोड़ने योग्य उपसनारूपी यज्ञ वा संग्राम में (देवानाम्) दिव्यगुणों से परिपूर्ण विद्वान् वा दिव्य गुणयुक्त पदार्थों में

(देवः) दिव्यगुण सम्पन्न (अद्भुतः) आश्चर्य रूप गुण कर्म और स्वभाव से युक्त (चारुः) अत्यन्त श्रेष्ठ (मित्रः) बहुत सुख करने और सब दुःखों का विनाश करनेवाले (असि) हैं, तथा (वसूनाम्) वसने और वसाने वाले मनुष्यों के बीच (वसुः) वसने और वसानेवाले (असि) हैं इस कारण (तव) आपके (सप्रथस्तमे) अच्छे प्रकार अति फैले हुए गुण कर्म स्वभावों के साथ वर्त्तमान (शर्मन्) सुख में (वयम्) हम लोग अच्छे प्रकार निश्चित (स्याम) हों और (तव) आपके (सख्ये) मित्र पन में कभी (मारिषामा) वे मन नहों ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालं०—किसी मनुष्य कीभी परमेश्वर और विद्वानों की सुख प्रकट करने वाली मित्रता अच्छे प्रकार स्थिर नहीं होती,इससे इसमें हम मनुष्यों को स्थिर मति के साथ प्रवृत्त होना चाहिये ॥

मा नो॑ वधीरिन्द्र॒ मा परा॑ दा॒ मा नः॑ प्रि॒या भोज॑नानि॒ प्र मो॑षीः । आण्डा॑ मा नो॑ मघवञ्छक्र॒ निर्भे॒न्मा नः॒ पात्रा॑

भेत्सहजानुषाणि॥४९॥ऋ० १।७।१९।८।

पदार्थः—हे (मघवन्) प्रशंसित धन युक्त (शक्र) सब व्यवहार के करनेको समर्थ(इन्द्र)शत्रुओंको विनाश करने वाले सभा के स्वामी आप (नः) हम प्रजास्थ मनुष्यों को (मा, बुधीः) मत मारिये (मा, परा, दाः) अन्याय से दण्ड मत दीजिये स्वाभाविक काम और (नः) हम लोगों के (सहजानुषाणि) जो जन्म से सिद्ध उनके वर्त्तमान (प्रिया) पियारे (भोजनानि) भोजन पदार्थों को (मा, प्र, मोषीः) मत चोरिये (नः) हमारे (आण्डा) अण्डा के समान जो गर्भ में स्थित हैं उन प्राणियों को (मा, निर्भेत) विदीर्ण मत कीजिये (नः) हम लोगों के (पात्रा) सोने चांदी के पात्रों को (माभेत) मत विगाड़िये ॥

भावार्थः—हे सभापति ! तू जैसे अन्याय से किसी को न मारके किसी भी धार्मिक सज्जन से विमुख न होकर चोरी चकारी आदि दोष रहित परमेश्वर दया का प्रकाश करता है, वैसेही अपने राज्य के काम करनेमें प्रवृत्त हो ऐसे वर्त्ताव

के विना राजा से प्रजा सन्तोष नहीं पाती ॥

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कं मा न॒ उक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ उक्षि॒तम् । मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं॒ मा नः॑ प्रि॒याः स्त॒न्वो॑ रुद्र रीरिषः ५० ऋ० १ । ८ । ६ । ७

पदार्थः—(रुद्र) न्यायाधीश दुष्टोंको रुलाने हारे सभापति (नः) हमलोगों से (महान्तम्) बुड्ढे वा पढ़ेलिखे मनुष्य को (मा) मत (बधीः) मारो (उत) और (नः) हमारे (अर्भकम्) बालक को (मा) मतमारो (नः) हमारे (उक्षन्तम्) स्त्री संग करने में समर्थ युवावस्था से परिपूर्ण मनुष्यों को (मा) मतमारो (उत) और (नः) हमारे (उक्षन्तम्) वीर्यसेचन से स्थितहुए गर्भको (मा) मतमारो (न) हमलोगों के (पितरम्) पालने और उत्पन्न करनेहारे पिता वा उपदेश करनेवाले को (मा) मतमारो (उत) और (मातरम्) मान सन्मान और उत्पन्न करने हारी माता वा विदूषी स्त्री को (मा) मत मारो (नः) हम लोगों की (प्रियाः) स्त्री आदि के पियारे (तन्वः) शरीरों को (मा) मत मारो

और अन्यायकारी दुष्टों को (रीरिषः) मारो ।

भावार्थः—हे मनुष्यों! जैसे ईश्वर पक्षपात को छोड़ के धार्मिक सज्जनों को उत्तम कर्मों के फल देने से सुख देता और पापियों को पाप का फल देने से पीड़ा देता है वैसेही तुम लोग भी अच्छा यत्न करो ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमि त्वा हवामहे ॥ ५१ ॥

ऋ० १।८।६।८ ॥

भावार्थः—हे(रुद्र) दुष्टोंको रुलाने हारे सभापति (हविष्मन्तः) जिनके प्रशंसा युक्त संसारके उपकार करनेके कामहैं वे हमलोग जिस कारण (सदम्) स्थिर वर्तमान ज्ञानको प्राप्त (त्वाम् इत्) आपहीको (हवामहे) अपना करतेहैं इससे (भामितः) क्रोधको प्राप्त हुए आप (नः) हमलोगोंको (तोके) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक वा (तनये) बालकाईसे जो ऊपरहै उस

बालकमें (मा) (रीरिषः) घात मत करो (नः) हम लोगों के (आयौ) जीवन विषय में (मा) मत हिंसा करो (नः) हम लोगों के (गोषु) गौ आदि पशु संघात में (मा) मत घात करो (नः) हम लोगों के (अश्वेषु) घोड़ों में (मा) घात मतकरो (नः) हमारे (वीरान्) वीरों को (मा) मत (वधीः) मारो ॥

भावार्थः—क्रोध को प्राप्तहुए सज्जन राजपुरुषों को किसी का अन्याय से हनन न करना चाहिये और गौआदि पशुओं की सदा रक्षा करना चाहिये । प्रजाजनों को भी राजा के आश्रय सेही निरन्तर आनन्द करना चाहिये। और सभी को मिलकर ईश्वर की ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि, हे परमेश्वर! आपकी कृपा से हम लोग बाल्यावस्था में विवाह आदि बुरे काम करके पुत्रादिकों का विनाश कभी नकरें और वे पुत्र आदि भी हम लोगों के विरुद्ध काम को नकरें। तथा संसार का उपकार करने हारे गो आदि पशुओं का कभी विनाश न करें।

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्म·

पुत्र इव सवनेषु शंससि ॥ वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ५२ ऋ० २।८।१२।२

पदार्थः—हे (शकुने) परवेरू के समान सामर्थ्य वाले जो तुम (उद्गातेव) ऊर्ध्व स्वर से वेद को गाते हुए के समान (साम) सामवेदका (गायसि) गान करते हो (ब्रह्मपुत्रइव) चारों वेदोंके ज्ञाता का जैसे कोई पुत्र हो वैसे (सवनेषु) यज्ञ सम्बन्ध में प्रातःकालकी क्रिया आदि में (शंससि) स्तुति करते सो तुम (वृषेव) महा बली बैलके समान(वाजी)बलवान् (शिशुमतीः) प्रशंसित बालकों वाली स्त्रियोंको (अपीत्य) निश्चय से प्राप्तहोकर (नः)हमलोगों के लिये (सर्वतः) सब ओर से (भद्रम्) कल्याण का (अवध) उपदेशकर । हे (शकुने) कहने की शक्ति से युक्त पुरुष तू सब ओर विद्याका उपदेशकर । हे (शकुने) सब ओर से शक्तिमान् (नः) हमलोगों के लिये (विश्वतः) सब ओर

से (पुण्यं) पुण्य का (आवद) उपदेशकर

भावार्थः—जैसे वेदवक्ता विद्वान्‌जन नियम से पाठ और वेदोक्त आचार को करते हैं वैसे उपदेश करनेवाले स्त्री पुरुष सबकी उन्नति के लिये सर्वदा सत्योपदेश करें। जिससे सबके सुख सब ओर से बढ़ें ॥

आवदँस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः। यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥५३॥ ऋ० २।८।१२।३॥

पदार्थः—हे (शकुने) शक्तिमान् पक्षी के समान वर्त्तमान तू (आवदन्) सब ओर से उपदेश करता हुआ (भद्रम्) कल्याण करने योग्य प्रस्ताव का (आवद) अच्छे प्रकार उपदेश कर (तूष्णीम्) मौन को आलम्बन कर (आसीनः) बैठे हुए योग का अभ्यास करता हुआ (नः) हम लोगों की (सुमतिम्) शुभबुद्धि (चिकिद्धि) समझ (उत्पतन्) ऊपर को उड़ने के समान जिस (भद्रम्) कल्याण करने योग्य काम

को (यथा) जैसे (कर्करिः) निरन्तर करने वाला हो वैसे (वदसि) कहते हो इसी से (सुवीराः) सुन्दर वीरों वाले हम लोग. (विदथे) संग्राम में (बृहत्) वहुत कुछ (वदेम) कहें ॥

भावार्थः—इस मंत्रमें वाचकलु०—जो विद्याओं को सुन कर मनन करते हुए पढ़ाते और सत्यको जान औरों को उपदेश करते हैं, वे सबके कल्याण करने वाले होते हैं ।

ओ३म् महाराजाधिराजाय परमात्मने नमोनमः

समाप्तोयं प्रथमः प्रकाशः ॥

॥ ओ३म् ॥
तत्सत्परमात्मने नमः ॥

अथ द्वितीयः प्रकाशः ॥

ओ३म् सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १॥ तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्दवल्ली प्रप० । १० । प्रथमानुवाकः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे सहनशीलेश्वर! आपके अनुग्रहसे (नौ) हम सब लोग (सह) परस्पर (अवतु) परीति मान, रक्षक, सहायक हों और (नौ) हम सब लोग (सह) परस्पर हित से (भुनक्तु) परमानन्द का भोग करें और हम लोग (सह) परस्पर हितसे (वीर्य्यं) पराक्रमकी वृद्धि (करवावहै) सदा किया करें (नौ) हमलोगों का (अधीतम्) पठन पाठन (तेजस्वि) अति प्रकाशित (अस्तु) हो और हमलोगों में परस्पर (मा विद्विषावहै) कभी विरोध नहो ॥ १ ॥

भावार्थः- हम सब तन, मन, धन, विद्या, इनको परस्पर सबके सुखोपकार में परम प्रीति से लगावैं ॥ १ ॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम-स्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्म-नीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽ-र्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ यजु०॥ अ० ४० । ॥ ८ ॥

पदार्थः—हेमनुष्यों जो ब्रह्म (शुक्रम्)शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरसे रहित–(अव्रणम्) छिद्र रहित और नहीं छेद करने योग्य (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि के साथ सम्बन्ध रूप वन्धन से रहित (शुद्धम्)अविद्यादि दोषों से रहित होनेसे सदा पवित्र और (अपापविद्धम्) जो पाप युक्त पापकारी और पापमें प्रीति करनेवाला कभी नहीं होता (परि.आगात्)सब ओर से व्याप्तहै जो (कविः)सर्वज्ञ (मनीषी)सब जीवोंके मनों की वृत्तियोंको जानने वाला (परिभूः)

दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला और (स्वयम्भूः) अनादिस्वरूप जिस्की संयोग से उत्पत्ति, वियोग से विनाश, माता पिता गर्भ वास जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादि स्व-रूप अपने २ स्वरूप से उत्पत्ति और विनाश रहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये (याथातथ्य-तः) यथार्थभाव से (अर्थात्) वेद द्वारा सब पदार्थों को (व्यदधात्) विशेषकर बनाता है वही परमेश्वर तुम लोगों को उपासना करने के योग्यहै ॥ ८ ॥ २ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! जो अनन्तशक्ति युक्त अजन्मा निरन्तर सदा मुक्त न्यायकारी निर्मल सर्वज्ञ सबका साक्षी नियन्ता अनादि स्वरूप ब्रह्म कल्प के आरम्भ में जीवों को अपने कहे वेदों से शब्द अर्थ और उनके सम्बन्ध को जनाने वाली विद्या का उपदेश न करे तो कोई विद्वान् नहोवे और न धर्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों के भोगने को समर्थ हो इस लिये इसी ब्रह्मकी सदैव उपासना करो ॥८॥२॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥३॥

य० ३६ ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (दृते) अविद्यारूपी अन्धकार कोनिवारक जगदीश्वर वा विद्वान् जिससे सर्वाणि) सब (भूतानि)प्राणी (मित्रस्य)मित्रकी (चक्षुषा) दृष्टि से (मा)मुझको (सम्,ईक्षन्ताम्) सम्यक् देखें (अहम्)मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा)दृष्टि से (सर्वाणि,भूतानि)सब प्राणियों को (समीक्षे)सम्यक् देखूं इसप्रकार सब हम लोग परस्पर (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (समीक्षामहे) देखें इस विषय में हमको (दृꣳह) दृढ़ कीजिये॥१८।३॥

भावार्थः—वेही धर्मात्माजन हैं जो अपने आत्मा के सदृश सम्पूर्ण प्राणियों को मानैं किसी से भी द्वेष नकरैं और मित्र के सदृश सब का सदा सत्कार करें॥ १८॥ ३ ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु च
न्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः
स प्रजापतिः ॥ ४ ॥ य० ३२ मं। १

पदार्थः—हे मनुष्यो! (तत्) वह सर्वज्ञ सर्व-
व्यापी सनातन अनादि सच्चिदानन्द स्वरूप
नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, न्यायकारी,
दयालु, जगत् का स्रष्टा, धारणकर्त्ता और सबका
अन्तर्यामी (एव) ही (अग्निः) ज्ञान स्वरूप
और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि (तत्) वह
(आदित्यः) प्रलय समय सबको ग्रहण करने से
आदित्य (तत्) वह (वायुः) अनन्त बलवान्
और सब का धर्त्ता होने से वायु (तत्) वह (चं-
द्रमाः) आनन्द स्वरूप और आनन्दकारक होने
से चन्द्रमा (तत् एव) वही (शुक्रम्) शीघ्रकारी
वा शुद्धभाव से शुक्र (तत्) वह (ब्रह्म) महान्
होने से ब्रह्म (ताः) वह (आपः) सर्वत्र व्या-
पक होने से आप (उ) और (स) वह (प्र-
जापतिः) सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजा
पति है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ४ ॥ य०
अ० ३२। मं० । १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यों! जैसे ईश्वर के ये अग्निआदि

गौण नाम हैं वैसे औरभी इन्द्रादि नाम हैं इसी की उपासना फलवाली है ऐसा जानो॥ १॥

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनोयजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ५

यजु०अ०। ३६। मं०१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (मयि) मेरे आत्मा में (प्राणापानौ) प्राण और अपान ऊपर नीचे के श्वास दृढ़ हों मेरी (वाक्) वाणी (ओजः) मानस बल को प्राप्त हो उस वाणी और उन श्वासों के (सह) साथ मैं (ओजः) शरीर बल को प्राप्त होऊं (ऋचम्) ऋग्वेद रूप (वाचम्) वाणीको (प्रपद्ये) प्राप्त होऊं (मनः) मनन करने वाले अन्तःकरणके तुल्य (यजुः) यजुर्वेदको (प्रपद्ये) प्राप्तहोऊं (प्राणम्) प्राणकी क्रिया अर्थात् योगाभ्यासादिक उपासना के साधक (साम) सामवेदको (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं (चक्षु) उत्तम नेत्र और (श्रोत्रम्) श्रेष्ठ कान को (प्रपद्ये) प्राप्त होऊं वैसे तुम लोग इन सबको प्राप्त होओ॥ १॥ ५॥

भावार्थः—इस मन्त्रमें वाचकलु०—हे विद्वानों

तुम लोगों के सङ्ग से मेरी ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसनीय वाणी, यजुर्वेद के समान मन, सामवेद के सदृश प्राण और सत्रह तत्वों से युक्त लिङ्ग शरीर सुस्थ सब उपद्रवों से रहित और समर्थ होवे ॥ १ ॥ ५ ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ६ ॥ य० अ० ३२। मं. १० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यों (यत्र) जिस (तृतीये) जीव और प्रकृति से विलक्षण (धामन्) आधार रूप जगदीश्वर में (अमृतम्) मोक्ष सुख को (आनशानाः) प्राप्त होते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) सर्वत्र अपनी इच्छा पूर्वक विचरते हैं जो (विश्वा) सब (भुवनानि) लोग लोकान्तरों और (धामानि) जन्मस्थान नामों को (वेद) जानता है (सः) वह परमात्मा (नः) हमारा (बन्धुः) भाई के तुल्य मान्य सहायक (जनिता) उत्पन्न करने हारा (सः) वही

(विधाता) सब पदार्थों और कर्म फलों का विधान करनेवाला है यह निश्चय करो ॥ ६ ॥ १० ॥

भावार्थः–हे मनुष्यों ! जिस शुद्धस्वरूप परमात्मा में योगिराज विद्वान् लोग मुक्ति सुख को प्राप्त होके आनन्द करते हैं उसीको सर्वज्ञ सर्वोत्पादक और सर्वदा सहायकारी मानना चाहिये अन्य को नहीं ॥ ६ ॥ १० ॥

यतो॑ यतः स॒मीह॑से॒ ततो॑ नो॒ऽअभ॑यं कुरु । शं नः॑ कुरु प्र॒जाभ्यो॒ऽभ॑यं नः प॒शुभ्यः॑ । ७ । य० अ. । ३६ । मं. १२॥

पदार्थः–हे भगवन् ! ईश्वर आप अपने कृपा कटाक्ष से (यतोयतः) जिस स्थान से (समीहसे) सम्यक् चेष्टा करतेहो (ततः) उस२ से (नः) हमको (अभयम्) भय रहित (कुरु) कीजिये (न) :हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं से और (नः) हमारे (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं से (शम्) सुख और (अभयम्) निर्भय (कुरु) कीजिये ॥ ७ ॥ यजु० । अ० ३६ । मं० २२ ॥

भावार्थः–हे परमेश्वर ! आप जिस कारण सबमें अभिव्याप्त हैं इससे हमको और दूसरों

को सबकालों और सब देशोंमें सब प्राणियोंसे निर्भय कीजिये ॥ ७ ॥ ॥ २२ ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वातिमृत्यु मेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥८॥ यजु० । अ० । ३१ ॥१८॥

पदार्थः-हे जिज्ञासुपुरुष (अहम्) में जिस (एतम्) इस पूर्वोक्त (महान्तम्) बड़े२ गुणोंसे युक्त (आदित्यवर्णम्) सूर्यके तुल्य प्रकाश स्वरूप (तमसः) अन्धकार वा अज्ञानसे (परस्तात्) पृथक् वर्त्तमान (पुरुषम्) स्व स्वरूपसे सर्वत्र पूर्ण परात्माको (वेद) जान्ताहूँ (तम्, एव) उसीको (विदित्वा) जानके आप (मृत्युम्) दुःखदाई मरणको (अति, एति) उल्लङ्घन कर-जाते हो किन्तु (अन्यः) इससे भिन्न (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) अभीष्टस्थान मोक्षके लिये (न, विद्यते) नहीं विद्यमान है ॥ ८ ॥ यजु० अ० । ३१ । मं० ॥ १८ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्य इस लोक परलोकके

सुखोंकी इच्छा करें तो सबसे अतिबड़े स्वयं प्रकाश और आनन्दस्वरूप अज्ञानके लेशसे पृथक् वर्तमान परमात्माको जानकेही मरणादि अथाह दुःखसागरसे पृथक् होसकतेहैं यही सुखदाई मार्गहै इससे भिन्न कोईभी मनुष्योंकी युक्तिका मार्ग नहीं होता ॥ ८॥ ३१ ॥ १८ ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसिसहो मयि धेहि॥ ९ य० । अ० १९॥मं०।९।

पदार्थः—हे सकल शुभ गुण कर राजन्! जो तेरेमें (तेजः) तेज (असि) है उस (तेजः) तेजको (मयि) मेरे में (धेहि) धारण कीजिये जो तेरे में (वीर्यम्) पराक्रम (असि) है उस (वीर्यम्) पराक्रम को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तेरेमें (बलम्) बल (असि) है उस (बलम्) बलको (मयि) मुझ में भी (धेहि) धरिये जो तेरे में (ओजः) प्राण का

सामर्थ्य (असि) है उस (ओजः) सामर्थ्य को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तुझ में (मन्युः) दुष्टों पर क्रोध (असि) है उस (मन्युम्) क्रोध को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तुझ में (सहः) सहनशीलता (असि) है उस (सहः) सहनशीलता को (मयि) मुझ मेंभी (धेहि) धारण कीजिये ॥ ६ ॥ य० अ० १६ ॥ मं० ॥ ६ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि-जिन शुभ गुण कर्म स्वभावों को विद्वान् लोग धारण करें उनको औरों में भी धारण करावें और जैसे दुष्टाचारी मनुष्यों पर क्रोध करें वैसे धार्मिकमनुष्यों में प्रीति भी निरन्तर किया करें ॥ ६ ॥ यजु० । अ० । १६ । मं० ६ ॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशोदिशश्च। उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश ॥ १० ॥ यजु० ॥ अ० ॥ ३२ ॥ मं० ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! आप जो (भूतानि) प्राणियोंको (परीत्य) सब ओर से व्याप्त होके (लोकान्) पृथिवी सूर्यादि लोकोंको (परीत्य) सब ओर से व्याप्त होके (च) और ऊपर नीचे (सर्वाः) सब (प्रदिशः) आग्न्येयादि उपदिशा तथा (दिशः)पूर्वादि दिशाओंको (परीत्य) सब ओर व्याप्तहोके (ऋतस्य) सत्यके (आत्मानम्) स्वरूप वा अधिष्ठानको (अभि, सम्, विवेश) सन्मुखतासे सम्यक् प्रवेश करता है (प्रथमजाम्) प्रथम कल्पादिमें उत्पन्न चारवेद रूप वाणी को (उपस्थाय) पढ वा सम्यक् सेवन करके (आत्मना) अपने शुद्धस्वरूप वा अन्तःकरण से उसको प्राप्त हूजिये ॥ १० यजु० अ० । ३२ । मं० ११ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यों! तुम लोग धर्मके आचरण वेद और योगके अभ्यास तथा सत्संग आदि कर्मों से शरीरकी पुष्टि और आत्मा तथा अन्तःकरणकी शुद्धिको सम्पादन कर सर्वत्र अभिव्याप्त परमात्मा को प्राप्तहोके सुखी होओ ॥ १० ॥ यजु० अ० ३२ । मं० ॥ ११ ॥

भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धि-

यमुद्वा दर्दन्नः। भग प्रनो जनय गोभि-रश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥ ११॥

यजु० अ० ३४। मं० ३६॥

पदार्थः—हे (भग) ऐश्वर्ययुक्त (प्रणेतः) पुरुषार्थ के प्रति प्रेरक ईश्वर वा हे (भग) ऐश्वर्य के दाता (सत्यराधः) विद्यमान पदार्थों में उत्तम धनों-वाले (भग) सेवने योग्य विद्वान् आप (नः) हमारी (इमाम्) इस वर्त्तमान (धियम्) बुद्धि को (ददत्) देते हुए (उत, अव) उत्कृष्टता से रक्षा कीजिये। हे (भग) विद्यारूप ऐश्वर्य के दाता ईश्वर वा विद्वान् आप (गोभिः) गौ आदि पशुओं (अश्वैः) घोड़े आदि सवारियों और (नृभिः) नायक कुल निर्वाहक मनुष्यों के साथ (नः) हमको (प्र, जनय) प्रकट कीजिये, हे (भग) सेवा करते हुए विद्वान् जिससे हम लोग (नृ-वन्तः) प्रशस्त मनुष्योंवाले (प्र, स्याम) अच्छे प्रकार हों वैसे कीजिये॥ ११॥

य० अ० ३४। मं० ३६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि—जब २ ईश्वर की प्रार्थना तथा विद्वानों का संग करें तब २

बुद्धिकी प्रार्थना वा श्रेष्ठपुरुषों की चाहना किया करें ॥ ११ य० अ० ३४ मं० ॥ ३६ ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः । १२ यजु० अ० ४० मं० ५ ।

पदार्थः—हे मनुष्यों (तत्) वह ब्रह्म (एजति) मूर्खों की दृष्टिसे चलायमान् होता (तत्) (न, एजति) अपने स्वरूप से न चलायमान और न चलाया जाता (तत्) वह (दूरे) अधर्मात्मा अविद्वान् अयोगियों से दूर अर्थात् करोड़ोंवर्षमें भी नहीं प्राप्तहोता (तत्) वह (उ) ही (अन्तिके) धर्मात्मा विद्वान् योगियों के समीप (तत्) वह (अस्य) इस (सर्वस्य) सब जगत् वा जीवोंके (अन्तः) भीतर (उ) और (तत्) वह (अस्य, सर्वस्य इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप जगत् के (बाह्यतः) बाहर भी वर्त्तमान है ॥ १२ ॥ य० ४० । ५ ।

भावार्थः—हे मनुष्यों! वह ब्रह्म मूढकी दृष्टि में कम्पता जैसा है वह आप व्यापक होने से कभी नहीं चलायमान होता जो जन उसकी आज्ञा

से विरुद्ध हैं वे इधर उधर भागतेहुए भी उसको नहीं जानते और जो ईश्वरकी आज्ञाका अनुष्ठान करनेवाले हैं वे अपने आत्मा में स्थित अतिनिकट ब्रह्म को प्राप्त होते हैं जो ब्रह्म सब प्रकृति आदि के बाहर भीतर अवयवों में अभिव्याप्त होके अन्तर्यामीरूपसे सब जीवोंके सब पापपुण्यरूप कर्मों को जानताहुआ यथार्थ फल देता है यही सबको ध्यान में रखना चाहिये और उसी से सबको डरना चाहिये ॥ १२ ॥ ४०।५

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञोयज्ञेन कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्चऽऋक्च साम च बृहच्च रथन्तरञ्च। स्वर्देवा अगन्मामृता

अभूम प्रजापते प्रजा अभूम वेट्-स्वाहा ॥ १३ यजु० । अ० । १८ । मं० । ॥ २९ ॥ ॥

पदार्थः—हेमनुष्य ! तेरे प्रजाजनोंके स्वामी होनेके लिये (आयुः) जिससे जीवन होताहै वह आयु दी (यज्ञेन) परमेश्वर और अच्छे महात्माओंके सत्कारसे (कल्पताम्) समर्थहो (प्राणः) जीवनका हेतु प्राण वायु (यज्ञेन) संगकरने से (कल्पताम्) समर्थ होवे (चक्षुः) नेत्र (यज्ञेन) परमेश्वर वा विद्वान्के सत्कारसे (कल्पताम्) समर्थ हो (श्रोत्रम्) कान (यज्ञेन) ईश्वर वा विद्वान्के सत्कारसे (कल्पताम्) समर्थ हों (वाक्) वाणी (यज्ञेन) ईश्वर०से (कल्पताम्) समर्थहो (मनः) संकल्प बिकल्प करने वाला मन (यज्ञेन) ईश्वर०से (कल्पताम्) समर्थहो (आत्मा) जोकि,शरीर इन्द्रिय तथा प्राणआदि पवनोंको व्याप्त होताहै वह आत्मा (यज्ञेन) ईश्वर०से (कल्पताम्) समर्थहो (ब्रह्मा) चारों वेदोंका जानने वाला विद्वान् (यज्ञेन) ईश्वर वा वि०से (कल्पताम्) समर्थहो (ज्योतिः)

न्यायका प्रकाश (यज्ञेन)ईश्वर वा वि०से (कल्पताम्) समर्थहो (स्वः) सुख (यज्ञेन) ईश्वर वा वि०से (कल्पताम्) समर्थहो (पृष्ठम्) जाननेकी इच्छा (यज्ञेन) पठनरूप यज्ञसे (कल्पताम्) समर्थहो (यज्ञः) पाने योग्य धर्म (यज्ञेन) सत्य व्यवहार से. (कल्पताम्) समर्थ हो (स्तोमः) जिस में स्तुति होतीहै वह अथर्ववेद (च) और (यजुः) जिससे जीव सत्कार आदि करताहै वह यजुर्वेद (च) और (ऋक्) स्तुतिका साधक ऋग्वेद (च) और (साम)सामवेद (च) और (बृहत्) अत्यन्त बड़ा वस्तु (च) और सामवेदका (रथन्तरम्) रथन्तर नाम वाला स्तोत्र (च) भी ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से समर्थ हो । हे (देवाः) विद्वानों जैसे हम लोग (अमृताः) जन्म मरण के दुःख से रहित हुए (स्वः) मोक्ष सुख को (अगन्म) प्राप्त हों वा (प्रजापतेः) समस्त संसार के स्वामी जगदीश्वर की (प्रजाः)पालने योग्य प्रजा (अभूम) हो तथा (वेट्) उत्तम क्रिया और (स्वाहा) सत्य वाणी से युक्त (अ-

भूम) हों वैसे तुमभी होओ ॥ १३ ॥
यजु० । अ० १८ । मं० २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यहां पूर्व मन्त्रसे (ते, आधिपत्याय) इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है । मनुष्य धार्मिक विद्वान्जनों के अनुकरण से यज्ञ के लिये सब समर्पण कर परमेश्वर और राजा को न्यायाधीश मानके न्याय परायण होकर निरन्तर सुखी हों ॥ १३ ॥

यस्मान्न जातः परो अन्योऽअस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया सᳪंरराणस्त्रीणि ज्योतीᳪंषि सचते सषोडशी ॥ १४ ॥ यजुर्वेद । अध्याय ८ । मन्त्र ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(यस्मात्) जिस परमेश्वर से (परः) उत्तम (अन्यः) और दूसरा (न) नहीं (जातः) हुआ और (यः) जो परमात्मा (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों को (आविवेश) व्याप्त होरहा है (सः) वह (प्रजया) सब संसार से (सᳪंरराणः) उत्तमदाता होताहुआ

(षोडशी) इच्छा प्राण श्रद्धा पृथिवी जल अग्नि वायु, आकाश दशों इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य्य, तप, मन्त्र लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी (प्रजापतिः) संहारमात्र के स्वामी परमेश्वर (त्रीणि) तीन (ज्योतींषि) अर्थात् सूर्य्य विजुली और अग्निको (सचेत)सब पदार्थों में स्थापित करताहै॥ १४॥ य० अ०८ मं० ३६।

भावार्थः—गृहाश्रमकी इच्छा करनेवाले पुरुषों को चाहिये कि, जो सर्वत्र व्याप्त सब लोकों का रचने और धारण करनेवाला दाता न्यायकारी सनातन अर्थात् सदा ऐसाही बनारहताहै सत् अविनाशी चैतन्य और आनन्दमय नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव और सब पदार्थोंसे अलगरहने वाला छोटेसे छोटा बड़ेसे बड़ा सर्वशक्तिमान् परमात्मा जिससे कोईभी पदार्थ उत्तम वा जिसके समान नहींहै उसकी उपासना करें॥ १४॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव॥ सचस्वा नः स्वस्तये॥ १५। यजु० ॥ अ० ३॥। २४।॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर जो आप

कृपा करके जैसे (सूनवे) अपने पुत्र के लिये (पितेव) पिता अच्छे २ गुणों को सिखलाता है वैसे। (नः) हमारे लिये (सूपायनः) श्रेष्ठ ज्ञान के देने वाले (भव) हैं वैसे (सः) सो आप (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सुख के लिये (सचस्व) निरन्तर संयुक्त कीजिये ॥ १५ ॥ यजु० । अ० । ३ । मं० २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे सबके पालन करने वाले परमेश्वर! जैसे कृपा करने वाला कोई विद्वान् मनुष्य अपने पुत्रों की रक्षा कर श्रेष्ठ २ शिक्षा देकर विद्या धर्म अच्छे २ स्वभाव और सत्य विद्या आदि गुणों में संयुक्त करता है वैसेही आप हम लोगों की निरन्तर रक्षा करके श्रेष्ठ २ व्यवहारों में संयुक्त कीजिये ॥ १५ ॥ य० अ० । ३ । मं० । २४ ॥

विभूरसि प्रवाहणः । वह्निरसि हव्यवाहनः । श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥ १६ ॥ यजुर्वेद । अध्याय० ॥ ॥ ५ मन्त्र । ३१ ॥

पदार्थः--हे जगदीश्वर वा विद्वन् जिससे आप जैसे व्यापक आकाश और ऐश्वर्ययुक्त राजा होता है वैसे (विभुः) व्यापक और ऐश्वर्ययुक्त। (असि) हैं (वह्निः) जैसे होम किये हुए पदार्थों को योग्य पहुंचाने वाला अग्नि है वैसे। (हव्यवाहनः) हवन करने योग्य पदार्थों को संपादन करनेवाले (असि) हैं जैसे जीवोंमें प्राण हैं वैसे। (प्रचेताः) चेतकरने-वाले। (श्वात्रः) विद्वान्। (असि) हैं जैसे सूत्रात्मा पवन सब में व्याप्त है वैसे। (विश्ववेदाः) विश्वको जानने (तुथः) ज्ञानको बढाने वाले। (असि) हैं इससे आप सत्कार करने योग्य हैं ऐसा हम-लोग जानते हैं ॥१६॥ यजु०। अ०। ५। मं० ३१॥

भावार्थः—इसमंत्रमें श्लेष और उपमालंकार हैं। सबमनुष्योंको उचित है कि, ईश्वर और विद्वान्का सत्कार करना कभी न छोड़ें क्योंकि अन्य किसीसे विद्या और सुखका लाभ नहीं होसकता है इसलिये इनको जानें ॥ १६ ॥ य० । अ० । ५ । मं० ३१

उशिगसि कविरङ्घारिरसि
बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यू

रसि मार्जालीयः॥ सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनः। ऋतधामासिस्वर्ज्योतिः॥ १७॥ य०। अ० ५। मं०। ३२।॥

पदार्थः- हेजगदीश्वर! जिसकारण आप(उशिक्) कान्तिमान (असि) हैं (अघारिः) खोटे चलन वाले जीवोंके शत्रु वा (कविः) क्रान्तप्रज्ञ (असि)हैं (बम्भारिः) बंधन के शत्रु (अवस्युः) तारादि तन्तुओंके विस्तार करनेवाले (असि) हैं (दुवस्वान्) प्रशंसनीय सेवायुक्त स्वयं (शुन्ध्युः) शुद्ध (असि) हैं (मार्जालीयः) सबको शोधने वाले (सम्राट्) और अच्छीप्रकार प्रकाशमान (असि) हैं (कृशानुः) पदार्थोंको अतिसूक्ष्म (पवमानः) पवित्र और (पारिषद्यः) सभामें कल्याण करनेवाले (असि) हैं जैसे (प्रतक्वा) हर्षित और (नभः) दूसरेके पदार्थ हरलेनेवालोंको मारनेवाले (असि) हैं (हव्यसूदनः) जैसे होमके द्रव्यको यथायोग्य व्यवहार

में लाने वाले और (मृष्टः) सुख दुःखको सहन-करने और करानेवाले (असि) हैं जैसे (स्वर्ज्योतिः) अंतरिक्षको प्रकाश करनेवाले और (ऋतधामा) सत्यधाम युक्त (असि) हैं वैसेंही उक्तगुणोंसे प्रसिद्ध आप सबमनुष्योंको उपासना करनेयोग्य हैं ऐसा हमलोग जानते हैं ॥ १७ ॥ य० अ० ५ । मं० । ३२

भावार्थः—इसमंत्र में उपमालङ्कार है । जिस-परमेश्वरने समस्त गुणवाले जगत्को रचा है उन्हीं गुणोंसे प्रसिद्ध उसकीउपासना सबमनुष्यों को करनी चाहिये ॥ १७ ॥ ३२ ॥

समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा संताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन्पथि देवयाने भूयात् ॥ १८ ॥ य० । अ० । ५ । मं ० । ३३ ॥

पदार्थः—जैसे परमेश्वर (समुद्रः) सब प्राणियों का गमनागमन कराने हारा (विश्व-

व्यचाः) जगत् में व्यापक और (अजः) अजन्मा (असि) है (एकपात्) जिस के एक पाद में विश्व है (अहिः) वा व्यापन शील (बुध्न्यः ।) तथा अन्तरिक्ष में होनेवाला (असि) है और (वाक्) वाणी रूप (असि) है (ऐन्द्रं) परमैश्वर्य का (सदः) स्थान रूप है और (ऋतस्य) सत्य के (द्वारौ) मुखों को (मासंताप्तम्) संताप कराने वाला नहीं है (अध्वपते) हे धर्मव्यवहार के मार्ग को पालन करने हारे विद्वानो वैसे तुमभी संताप न करो । हे ईश्वर ! (मा) मुझ को (अध्वनाम्) धर्म शिल्प के मार्ग से (प्र तिर) पार कीजिये और (मे) मेरे (अस्मिन्) इस (देवयाने) विद्वानों के जाने आने योग्य (पथि) मार्ग में जैसे (स्वस्ति) सुख (भूयात्) हो वैसा अनुग्रह कीजिये । १८। य० ५ ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कारहै, ईश्वर वा जगत् के कारण रूप जीव को अनादित्व होने वा जन्म न होने से अविनाशिपनहै परमेश्वर की कृपा उपासना सृष्टि की विद्या वा अपने पुरुषार्थ

के साथ वर्त्तमान हुए मनुष्यों को विद्वानों के मार्ग की प्राप्ति और उसमें सुख होता है। और आलसी मनुष्यों को नहीं होता ॥ १८ ॥ य० । अ० ५ । मं० ॥ ३३ ॥

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि। पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोवयजनमस्यैनसएनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १९ ॥ य० ॥ अ० ॥ ८ ॥ मं० ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे सबके उपकार करनेवाले मित्र ! आप (देवकृतस्य) दान देनेवाले के (एनसः) अपराध के (अवयजनम्) विनाश करने वाले (असि) हो (मनुष्य कृतस्य) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनसः) अपराध के (अवय जनम्) विनाश करने वाले (असि) हो (पितृ·

कृतस्य) पिता के किये हुए (एनसः) विरोध आचरण के (अवय जनम्) अच्छे प्रकार हरने वाले (असि) हो (आत्मकृतस्य) अपने कर्तव्य (एनसः) पाप के (अवय जनम्) दूर करने वाले (असि) हो (एनसः) (एनसः) अधर्म अधर्म के (अवय जनम्) नाश करने हारे (असि) हो (विद्वान्) जानता हुआ मैं (यत्) जो (च) कुछ भी (एनः) अधर्म्माचरण (चकार) किया करता हूं वा करूं (अविद्वान्) अनजान मैं (यत्) जो (च) कुछभी पाप किया करता हूं वा करूं (तस्य) उस (सर्वस्य) सब (एनसः) दुष्ट आचरण के (अवय जनम्) दूर करने वाले आप (असि) हैं ॥ १६॥ य० ८। मं० ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है जैसे विद्वान् गृहस्थ पुरुष दान आदि अच्छे काम के करने वाले जनों के अपराध दूर करने में अच्छा प्रयत्न करें। जाने वा विना जाने अपने कर्तव्य अर्थात् जिसको किया चाहता हो उस अपराध को आप छोड़ै तथा औरों के किये हुए अपराध

को ओरों से छुड़ावें वैसे कर्म करके सब लोग यथोक्त समस्त सुखों को प्राप्त हों॥ १६ ॥ य० अ० ८ ॥ मं० १३ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २० । य० १३ । ४ ।

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग जो इस (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसार का (जातः) रचने और (पतिः) पालन करनेहारा (एकः) सहायकी अपेक्षा से रहित (हिरण्यगर्भः) सूर्यादि तेजोमय पदार्थों का आधार (अग्रे) जगत् रचनेके पहिले (समवर्त्तत) वर्त्तमान (आसीत्) था (सः) वह (इमाम्) इस संसारको रचनेके (उत) और (पृथिवीम्)प्रकाश रहित और (द्याम्) प्रकाश सहित सूर्यादि लोकोंको (दाधार) धारण करता हुआ उस (कस्मै) सुखरूप प्रजा पालने वाले (देवाय)प्रकाशमान परमात्माकी (हविषा) आत्मादि सामग्री से (विधेम)सेवा

में तत्पर हों वैसे तुमलोगभी इस परमात्मा का सेवन करो ॥ २० ॥ य० अ० १३ । मं० ४ ।

भावार्थः—हे मनुष्यों तुमको योग्यहै कि इस प्रसिद्ध सृष्टिके रचनेसे प्रथम परमेश्वरही विद्यामान था जीव गाढ़निद्रा सषुप्ति में लीन और जगत्का कारण अत्यन्त सूक्ष्मावस्थामें आकाश के समान एकरस स्थिर था जिसने सब जगत् को रचके धारण किया और अन्त समय में प्रलय करता है उसी परमात्मा को उपासनाके योग्य मानो ॥ २० । य० अ० । १३ । मं० ४ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति शन्नोअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ य० अ० । ३६ । मं० ८ नंबर । २१ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! जो आप (इन्द्रः) बिजुली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं उन आपकी कृपासे (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्रादिकेलिये (शम्) सुख (मस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पदे) गौ आदि के लिये (शम्) सुख होवे ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मंत्रमें वाचकलु०—हे जगदीश्वर!

जिस से आप सर्वत्र सब ओरसे अभिव्याप्त मनुष्य पश्वादि को सुख चाहने वाले हैं इससे सबको उपासना करने योग्य हैं ॥ २१ ॥ य० अ० ३६ मं० ८ ॥

शन्नो वातः पवताᳪ शन्नस्तपतु सूर्य्यः। शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो॑ऽअभिवर्षतु।२२। य० अध्याय। ३६। मं० १० ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष जैसे (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले (सूर्य्यः) सूर्य्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (तपतु) तपे (कनिक्रदत्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (देवः) उत्तम गुणयुक्त विद्युत्रूप अग्नि (नः) हमारेलिये (शं) कल्याणकारी हो और (पर्जन्यः) मेघ हमारे लिये (अभि, वर्षतु) सब ओर से वर्षा करे वैसे हमको शिक्षा कीजिये ॥ २२ ॥ य० अ०। ३६। मं। १० ॥

भावार्थः—इस मंत्रमें वाचकलु० हे मनुष्यो

जिस प्रकारसे वायु, सूर्य्य विजुली और मेघ सबको सुखकारी हों वैसा अनुष्ठान कियाकरो।

२२। य० मं० ३६। १०।

अहानि शं भवन्तु नः शᳪं रात्रीः प्रति धीयताम्। शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंयोः ३२॥ यजु० अ०। ३६। मं०।। ११॥

पदार्थः--हे परमेश्वर वा विद्वान्जन जैसे (अवोभिः) रक्षा आदिके साथ (शंयोः) सुख की (सुविताय) प्रेरणा के लिये (नः) हमारे अर्थ (अहानि) दिन (शम्) सुखकारी (भवन्तु) हों (रात्रीः) रातें (शम्) कल्याण के (प्रति) प्रति (धीयताम्) हमको धारण करें (इन्द्राग्नी) विजुली और प्रत्यक्ष अग्नि (नः) हमारे लिये शम् सुखकारी (भवताम्) होवें (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य सुख जिन सें प्राप्त हुआ वे (इन्द्रा वरुणा) विद्युत् और जल (नः) हमारे

लिये (शम्) सुखकारी हों (बाजसातौ) अन्नोंके सेवनकेहेतु संग्राममें (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और पृथिवी (नः) हमारेलिये (शम्) सुखकारी होवें और (इन्द्रासोमा) बिजुली और ओषधियां (शम्) सुखकारिणी हो वैसे हमको आप अनुकूल शिक्षाकरें ॥ २३ ॥ य० । ३६ ॥ ११

भावार्थः-इसमन्त्रमें वाचकलु०-हेमनुष्यों! जो ईश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् लोगों की शिक्षा में आप लोग प्रवृत्त हों तो दिन रात तुम्हारे भूमि आदि सब पदार्थ सुखकारी होवें ॥ २३ ॥ य० ॥ ३६ ॥ ११ ॥

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत् ॥ २४ ॥ यजु० अ० ३२ ॥ मं० ॥ ९ ॥

पदार्थः—हेमनुष्यो (यः) जो (गन्धर्वः) वेदवाणीको धारणकरने वाला (विद्वान्) पण्डित (गुहा) बुद्धिमें (विभृतम्) विशेष धारणकिये

(अमृतम्) नाश रहित (धाम) मुक्ति के स्थान (तत्) उस (सत्) नित्य चेतन ब्रह्म का (नु) शीघ्र (प्र, वोचेत्) गुण कर्म स्वभावों के सहित उपदेश करे और जो (अस्य) इस अविनाशी ब्रह्म के (गुहा) ज्ञान में (निहिता) स्थित (पदानि) जानने योग्य (त्रीणि) तीन उत्पत्ति स्थिति, प्रलय वा भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान काल हैं (तानि) उनको (वेद) जानता है (सः) वह (पितुः) अपने पिता वा सर्वरक्षक ईश्वर का (पिता) ज्ञान देने वा आस्तिकत्व से रक्षक (असत्) होवै ॥ २४ ॥ य० ३२ ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यों ! जो विद्वान् लोग ईश्वर के मुक्तिसाधक बुद्धिस्थ स्वरूप का उपदेश करें ठीक २ पदार्थों के और ईश्वर के गुण कर्म स्वभावों को जानें वे अवस्था में बड़े पितादिकों के भी रक्षक योग्य होते हैं ऐसा जानों ॥ २४ ॥ य० अ० । ३२ । मं० ॥ ९ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्ति रोषधयः

शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः । सर्वꣳ शान्तिश्शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ २५ ॥ यजु० ॥ अ० । ॥ ३६ ॥ मं० ॥ १७ ॥

पदार्थः—हेमनुष्यों! जो (शान्तिः, द्यौः)प्रकाश युक्त पदार्थ शान्तिकारक (अन्तरिक्षम्) दोनों लोक के बीचका आकाश (शान्तिः) शान्तिकारी (पृथ्वी) भूमि (शान्तिः) सुखकारी निरुपद्रव (आपः) जल वा प्राण (शान्तिः) शान्तिदायी (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियां (शान्तिः) सुखदाई (वनस्पतयः) बट आदि बनस्पति (शान्तिः) शान्तिकारक (विश्वे देवाः) सब विद्वान्लोग (शान्तिः) उपद्रव निवारक (ब्रह्म) परमेश्वर वा वेद (शान्तिः) सुखदायी (सर्वम्) सम्पूर्ण वस्तु (शान्तिरेव) शान्तिही (शान्तिः) शान्ति (मा) मुझको (एधि) प्राप्त होवें (सा) वह (शान्तिः) शान्ति तुमलोगों के लिये भी प्राप्त होवे ॥ २५ ॥ य० अ० । ३६ । १७ ।

भावार्थः—हेमनुष्यों जैसे प्रकाश आदि पदार्थ शान्ति करनेवाले होवें वैसे तुमलोग प्रयत्न करो ॥ य० ॥ ३६ ॥ १७ ॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ य० अ २६ मं० । ४१ ॥ १६ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (शम्भवाय) सुख को प्राप्त करने हारे परमेश्वर (च) और (मयोभवाय) सुख प्राप्तिके हेतु विद्वान् (च) का भी (नमः) सत्कार (शङ्कराय) कल्याण करने (च) और (मयस्कराय) सब प्राणियों को सुखं पहुंचाने वालेका (च) भी (नमः) सत्कार (शिवाय) मङ्गलकारी (च) और (शिवतराय) अत्यन्त मङ्गल स्वरूप पुरुषका (च) भी (नमः) सत्कार करते हैं वे कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ यजु० अ० १६ ॥ मं० । ४१ ॥

भावार्थः—मनुष्योंको चाहिये कि,प्रेम भक्तिके साथ मब मङ्गलोंके दाता परमेश्वर की ही

उपासना और सेनाध्यक्षका सत्कार करें जिससे अपने अभीष्ट कार्य सिद्ध हों ॥ २६ ॥ य० १६ ४१

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २७ यजु० अ० २५। मं० २१ ॥

पदार्थः—हे (यजत्राः) संगकरनेवाले (देवाः) विद्वानों आपलोगोंके साथ से हम (कर्णेभिः) कानोंसे (भद्रम्) जिस से सत्यता जानी जावै उस वचन को (शृणुयाम) सुनें (अक्षभिः) आखों से (भद्रम्) कल्याण को (पश्येम) देखें (स्थिरैः) दृढ (अंगैः) अवयवों से (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुए (तनूभिः) शरीरों से (व्यत्) जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये सुख करने हारी (आयुः) अवस्था है उस को (वि अशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ २७ ॥ य० अ २५ । २१

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के साथ से विद्वान् होकर सत्य सुनें, सत्य देखें और जगदीश्वर की स्तुति करें तो वे बहुत अवस्था वाले हों मनु-

ष्यों को चाहिये कि—असत्य का सुनाना खोंटा देखना झूंठी स्तुति प्रार्थना प्रशंसा और व्याभिचार कभी न करें ॥ २७॥ य० अ० २५। मं० २१

ब्रह्मं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। सबुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ २८ ॥ य० अ० १३। मं० ३ ॥

पदार्थः—जो (पुरस्तात्) सृष्टि की आदि में (जज्ञानम्) सब का उत्पादक और ज्ञाता (प्रथमम्) विस्तारयुक्त और विस्तार कर्त्ता (ब्रह्म) सबसे बड़ा जो (सुरुचः) सुन्दर प्रकाश युक्त और सुन्दर रुचिका विषय (वेनः) ग्रहण के योग्य जिस (अस्य) इसके (बुध्न्यः) जल सम्बन्धी आकाश में वर्त्तमान सूर्य्य, चंद्रमा पृथिवी और नक्षत्र आदि (विष्ठाः) विविध-स्थलों में स्थित (उपमाः) ईश्वर ज्ञान के दृष्टांत लोक हैं उन सबको (सः) वह (आवः) अपनी व्याप्ति से आच्छादन करता है वह ईश्वर (विसीमतः) मर्य्यादा से (सतः) विद्यमान देखने योग्य (च) और (असतः) अव्यक्त (च)

और कारण के (योनिम्) आकाशरूप स्थान को (विवः) ग्रहण करता है उसी ब्रह्म की उपासना सब लोगों को नित्य अवश्य करनी चाहिये ॥ २८ ॥ यजु० अ० १३। मं० ३॥

भावार्थः—जिस ब्रह्म के जानने के लिये प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध सब लोक दृष्टान्त हैं जो सर्वत्र व्याप्त हुआ सबका आवरण और सभा का प्रकाश करता है और सुन्दर नियम के साथ अपनी २ कक्षा में सब लोकों को रखता है, वही अन्तर्य्यामी परमात्मा सब मनुष्यों के निरन्तर उपासना के योग्य है इससे अन्य कोई पदार्थ सेवने योग्य नहीं ॥ २८ ॥ यजु० अ० १३। मं० ३॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥ २९ ॥ यजु० अ० ३६ ॥ मं० २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यों ! जो ये (आपः) प्राण वा जल (ओषधयः) जो आदि ओषधियां

(नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुन्दर मित्र के समान वर्त्तमान (सन्तु) होवें वेही (यः) जो अधर्मी (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करें (च) और (यम्) जिस से (वयम्) हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तस्मै) उसके लिये (दुर्मित्रियाः) शत्रु के तुल्य विरुद्ध (सन्तु) होवें ॥ २६ ॥ यजु० अ० । ३६ ॥ मं २३ ॥

भावार्थः—जैसे अनुकूलता से जीते हुए इन्द्रिय मित्र के तुल्य हितकारी होते वैसे जलादि पदार्थ भी देशकाल के अनुकूल यथोचित सेवन किये हितकारी और विरुद्ध सेवन किये शत्रु के तुल्य दुःखदाई होते हैं । २६ ॥ य. ३६ । २३ ॥

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः । स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२॥ऽआविवेश ॥ ३० ॥ य० । अ० १७ । मं० १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यों (यः) जो (ऋषिः) ज्ञान

स्वरूप (होता) सब पदार्थों को देने वा ग्रहण करनेहारा (नः) हम लोगों का (पिता) रक्षक परमेश्वर (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को व्याप्त होके (न्यसीदत्) निरन्तर स्थित है और जो सब लोकों का (जुहत्) धारण करता है (सः) वह (आशिषा) आशीर्वाद से हमारे लिये (द्रविणम्) धन को (इच्छमानः) चाहता और (प्रथमच्छत्) विस्तृत पदार्थों को आच्छादित करता हुआ (अवरान्) पूर्ण आकाशादि को (आविवेश) अच्छे प्रकार व्याप्त होरहा है यह तुम जानों ३०। य० १७। १७॥

भावार्थः—सब मनुष्य लोग जो सब जगत् को रचने धारण करने पालने तथा विनाश करने और सब जीवों के लिये सब पदार्थों को देने-वाला परमेश्वर अपनी व्याप्ति से आकाशादि में व्याप्त होरहा है उसी की उपासना करें ॥ ३० ॥ य० १७ ॥ १७ ॥

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व । धर्मासि सुधर्मा मेन्य-

स्मेनृम्णानिं धारय ब्रह्मं धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥

३१ यजु० अ० ३८ ॥ मं० १४ ॥

पदार्थः—हे (धर्म) सत्य के धारक (सुधर्म) सुन्दर धर्म युक्त पुरुष वा स्त्री तू (अमेनि) हिंसा धर्म से रहित (असि) है जिस से (अस्मे) हमारे लिये (नृम्णानि) धनों को (धारय) धारण कर (ब्रह्म) वेद वा ब्राह्मण का (धारय) धारण कर (क्षत्रम्) क्षत्रिय वा राज्य को(धारय) धारण कर (विशम्) प्रजा को (धारय) धारण कर (ब्रह्म) वेद वा ब्राह्मण को (धारय) धारण कर (क्षत्रम्) क्षत्रिय वा राज्य को (धारय) धारण कर विशम्) प्रजा को (धारय) धारण कर उस से (इषे) अन्नादि के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर (ऊर्जे) बल आदि के लिये (पिन्वस्व) सेवन (ब्रह्मणे) वेद विज्ञान परमेश्वर वा वेदज्ञ ब्राह्मण के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर(क्षत्राय) राज्य के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर और(द्यावा पृथिवीभ्याम्) भूमि और सूर्य के लिये(पिन्वस्व) सेवन कर ॥ ३१ ॥ य० ३८ ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष अहिंसक धर्मात्मा हुए आपही धनों विद्या राज्य और प्रजा को धारण करें वे अन्न, वल, विद्या, और राज्य को पाके भूमि और सूर्य के तुल्य प्रत्यक्ष सुख वाले होंवें ३१ ॥ यजु० अध्याय ३८ ॥ मं० १४ ॥

किॅंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं तमात्स्वित्कथासीत्। यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिमा विश्वचक्षाः॥॥३२॥ यजु० अ० । १७। मं० १८ ॥

भावार्थः--हे विद्वन् पुरुष इस जगत् का (अधिष्ठानम्) आधार (किं, स्वित्) क्या आश्चर्यरूप (आसीत्) है तथा (आरम्भणम्) इसकार्य जगत् की रचना का आरम्भ कारण (कतमत्) बहुत उपादानों में क्या और वह (कथा) किस प्रकार से (स्वित्) तर्क के साथ (आसीत्) है कि (यतः) जिससे (विश्वकर्मा) सब सत्कर्मों वाला (विश्वचक्षाः) सब जगत् का द्रष्टा जगदीश्वर (भूमिम्) पृथिवी और (द्याम्)

सूर्यादि लोक को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (महिमा) अपनी महिमा से (व्यौर्णोत्) विविध प्रकार से आच्छादित करता है ॥ ३२ ॥ यजु० अध्याय । १७ । मं० । १८ ॥

भावार्थः—हेमनुष्यों ! तुमको यह जगत् कहां बसता क्या इसका कारण और किस लिये उत्पन्न होता है इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि जो जगदीश्वर कार्य जगत् को उत्पन्न तथा अपनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करके सर्वज्ञता से सबको देखता है वह इस जगत् का आधार और निमित्त कारण है वह सर्वशक्तिमान् रचना आदि के सामर्थ्य से युक्त है जीवोंको पाप पुण्य का फल देने भोगवानेके लिये इस सब संसार को रचा है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३२ ॥ यजु० अ० । १७ । । मं० । १८ ॥

तनूपा अंग्नेऽसि तन्वम्मे पाह्यायुर्दा अंग्नेऽस्यायुर्म्मे देहि । वर्चोदा अंग्नेऽसि॒वर्चो मे देहि ॥ अग्ने यन्मे

तन्वा ऊनन्तन्मऽआपृण ॥ ३३ ॥
य० अ० ३ । मं० । १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर । (यत्) जिस कारण आप (तनूपाः) सब मूर्तिमान् पदार्थों के शरीरों की रक्षा करने वाले (असि) हैं इस से आप । (मे) मेरे । (तन्वम्) शरीरकी (पाहि) रक्षा कीजिये । हे । (अग्ने) परमेश्वर जैसे आप (आयुर्दाः) सबको आयु के देने वाले । (असि) हैं वैसे । (मे) मेरे लिये । (आयुः) पूर्णआयु अर्थात् सौ वर्षतक जीवन । (देहि) कीजिये । हे (अग्ने) सर्व विद्यामय ईश्वर जैसे आप (वर्चोदा) सब मनुष्यों को विज्ञान देनेवाले । (असि) हैं वैसे । (मे) मेरे लिये भी ठीक २ गुण ज्ञान पूर्वक । (वर्चः) पूर्ण विद्याको । (देहि) दीजिये । हे (अग्ने) सबकामों को पूरण करने वाले परमेश्वर । (मे) मेरे । (तन्वाः) शरीरों में (यत्) जितना (ऊनम्) बुद्धिबल और शौरि आदि गुण कमहैं । (तत्) उतना अंग (मे मेरा (आपृण) अच्छे प्रकार पूरण कीजिये ॥ १ ॥ (अग्ने) यह भौतिक अग्नि (यत्) जैसे (तनूपा) पदार्थों की रक्षा का हेतु (असि) है वैसे जाठ-

राग्नि रूप से (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की (पांहि) रक्षा करता है (अग्ने) जैसे ज्ञान का निमित्त यह अग्नि (आयुर्दाः) सबके जीवन का हेतु (असि) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (आयुः) जीवन के हेतु क्षुधा आदि गुणों को (देहि) देता है (अग्ने) यह अग्नि जैसे (वर्चोदाः) विज्ञान प्राप्ति का हेतु (असि) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (वर्च्चः) विद्या प्राप्ति के निमित्त बुद्धि बलादिको (देहि) देता है तथा (अग्ने) जो कामना के पूरण करने में हेत भौतिक अग्नि है वह (यत्) जितना (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर में बुद्धि आदि सामर्थ्य (ऊनम्) कमहै (तत्) उतना गुण (आपृण) पूरण करता है ॥ २ ॥ ३३ ॥ यजु॰ अध्याय ३। मं॰ १७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है, जिस कारण परमेश्वर ने इस संसार में सब प्राणियों के लिये शरीर के आयु निमित्त विद्या का प्रकाश और सब अङ्गों की पूरणता रची है इसी से सब पदार्थ अपने २ स्वरूप को धारण करते हैं इसी प्रकार परमेश्वर की सृष्टि में प्रकाश आदि गुणवान् होने से यह अग्नि भी सब पदार्थों

के पालन का मुख्य साधन है । ३३ ॥ यजु० अ० । ३ । मं० १७ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥३४॥ यजु० अ० । १७ मं० । १९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (विश्वतश्चक्षुः) सब संसार को देखने (उत) और (विश्वतोमुखः) सब ओर से सब को उपदेश करनेहारा (विश्वतोबाहुः) सब प्रकार से अनन्त बल तथा पराक्रम से युक्त (उत) और (विश्वतस्पात्) सर्वत्र व्याप्ति वाला (एकः) अद्वितीय सहायरहित (देवः) अपने आप प्रकाश स्वरूप (पतत्रैः) क्रिया शील परिमाणु आदि से (द्यावा भूमी) सूर्य्य और पृथिवी लोक को (सं,जनयन्) कार्य्य रूप प्रकट करता हुआ (बाहुभ्याम्) अनन्त बल पराक्रम से सब जगत् को (सं,धमति) सम्यक् प्राप्त होरहा है उसी परमेश्वर को अपना सब ओरसे रक्षक उपास्य देव जानो ॥ ३४ ॥ यजु । अ० । १७ । मं० । १९

भावार्थः—जो सूक्ष्म से सूक्ष्म बड़े से बड़ा, निराकार अनन्त सामर्थ्य वाला सर्वत्र अभिव्याप्त प्रकाशस्वरूप अद्वितीय परमात्मा है वही अतिसूक्ष्म कारण से स्थूल कार्यरूप जगत् को रचने और विनाश करने को समर्थ है जो पुरुष इसको छोड़ अन्यकी उपासना करता है उस से अन्य जगत् में भाग्यहीन कौन पुरुष है ? ॥ ३४ ॥ य० १७ ॥ १६

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳪं सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः । नर्य प्रजां मे पाहि । शᳪंस्य पशून्मे पाहि । अथर्य पितुं मे पाहि ॥ ३५ ॥ य० अ० ३ । ३७ ॥

पदार्थः—हे (नर्य) नीति युक्त मनुष्यों पर कृपा करने वाले परमेश्वर आप कृपा करके । (मे) मेरी । (प्रजाम्) पुत्र आदि प्रजाकी । (पाहि) रक्षा कीजिये वा (मे) मेरे । (पशून्) गौ घोड़े हाथी आदि पशुओं की । (पाहि) रक्षा कीजिये । हे (अथर्य) संदेह रहित जगदीश्वर

आप। (मे) मेरे। (पितुम्) अन्नकी। (पाहि) रक्षा कीजिये हे (शंस्य) स्तुति करने योग्य ईश्वर आपकी कृपा से मैं (भूर्भुवः स्वः) जो प्रिय स्वरूप प्राण, बलका हेतु उदान तथा सब चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु व्यानवायु है उनके साथ युक्त होके। (प्रजाभिः) अपने अनुकूल स्त्री पुत्र विद्या धर्म मित्र भृत्य पशु आदि पदार्थों के साथ। (सुप्रजाः) उत्तम विद्या धर्म युक्त प्रजा सहित वा। (वीरैः) शौर्य धैर्य विद्या शत्रुओं के निवारण प्रजाके पालन में कुशलों के साथ। (सुवीरः) उत्तम शूरवीर युक्त और (पोषैः) पुष्टिकारक पूरण विद्यासे उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ।(सुपोषः) उत्तम पुष्टि उत्पादन करने वाला। (स्याम) नित्य होऊँ॥ ३५॥ यजु० अ० ३। मं.॥ ३७॥

भावार्थः—मनुष्यों को ईश्वर की उपासना वा उसकी आज्ञाके पालन का आश्रय लेकर उत्तम२ नियमों से वा उत्तम प्रजा शूरता पुष्टि आदि कारणों से प्रजा पालन करके निरन्तर सुखों को सिद्ध करना चाहिये॥ ३५। य० ३। ३७

किंस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥३६॥य० १७।२०॥

पदार्थः—(प्रश्न) हे (मनीषिणः) मनका निग्रह करने वाले योगीजनों तुम लोग (मनसा) विज्ञानके साथ विद्वानों के प्रति (किं,स्वित्) क्या (वनम्) सेवने योग्य कारण रूप बन तथा (कः) कौन (उ) वितर्क के साथ (सः) वह (वृक्ष) छिद्यमान अनित्य कार्यरूप संसार (आस) है ऐसा (पृच्छत) पूंछो । कि (यतः) जिस से (द्यावा पृथिवी) विस्तारयुक्त सूर्य्य और भूमि आदि लोकों को किसने (निष्टतक्षुः) भिन्न२ बनाया है । (उत्तर) (यत्) जो (भुवनानि) प्राणियों के रहने के स्थान लोक लोकान्तरों को (धारयन्) वायु विद्युत् और सूर्य्यादि से धारण कराता हुआ (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता है (तत्) (इत्) उसी (उ) प्रसिद्ध ब्रह्म को इस सब का कर्त्ता जानो ॥ ३६ ॥ य० । अ० १७ । मं० २० ।

भावार्थः—इस मन्त्र के तीन पादों से प्रश्न और अंत्य के एक पाद से उत्तर दिया है। वृक्ष शब्द से कार्य और बन शब्द से कारण का ग्रहण है जैसे सब पदार्थों को पृथिवी, पृथिवी को सूर्य, सूर्य को विद्युत और बिजुली को वायु धारण करता है वैसेही इन सबको ईश्वर धारण करता है ॥ ३६ ॥ यजु० अ० १७। मं० २० ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।३७। य० अ० ३६ ॥ मं० २४ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप जो (देवहितम्) ये विद्वानों के लिये हितकारी (शुक्रम्) शुद्ध (चक्षुः) नेत्र के तुल्य सबके दिखाने वाले (पुरस्तात) पूर्वकाल अर्थात् अनादि काल से (उत्, चरत्) उत्कृष्टता के साथ सबके ज्ञाता हैं (तत्) उस चेतन ब्रह्म आपको (शतम्, शरदः)

सौ वर्ष तक (पश्येम) देखें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) प्राणों को धारण करें जीवें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (शृणुयाम) शास्त्रों वा मङ्गल वचनों को सुनें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (अदीनाः) दीनता रहित (स्याम) हों (च) और (शतात्. शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी देखें, जीवें, सुनें, पढ़ें, उपदेश करें और अदीन रहें ॥ ३७ ॥ य० अ० ३६ ॥ मं० २४ ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा और आपके विज्ञान से आपकी रचना को देखतेहुए आपके साथ युक्त निरोग और सावधान हुए हम लोग समस्त इन्द्रियों से युक्त सौ वर्ष से भी अधिक जीवें, सत्य शास्त्रों और आपके गुणों को सुनें, वेदादिकों पढ़ावें, सत्य का उपदेश करें कभी किसी वस्तु के विना पराधीन न हों, सदैव स्वतन्त्र हुए निरन्तर आनन्द भोगें और दूसरों को आनन्दित करें ॥ ३७ ॥

या ते धामानि परमाणि याऽवमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा । शिक्षा

सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ ३८ ॥ य० अ० । ॥ १७ ॥ मं० २१ ॥

पदार्थः—हे (स्वधावः) बहुत अन्न से युक्त (विश्वकर्मन्) सब उत्तम कर्म करने वाले जगदीश्वर (ते) आपकी सृष्टि में (या) जो (परमाणि) उत्तम (या) जो (अवमा) निकृष्ट (या) जो (मध्यमा) मध्य कक्षा के (धामानि) सब पदार्थों के आधारभूत जन्मस्थान तथा नाम हैं (इमा इन सबको (हविषि) देने लेने योग्य व्यवहार में (स्वयम्) आप (यजस्व) सङ्गत कीजिये (उत) और हमारे (तन्वम्) शरीर की (वृधानः) उन्नति करते हुए (सखिभ्यः) आपकी आज्ञापालक हम मित्रों के लिये (शिक्षा) शुभ गुणों का उपदेश कीजिये ॥ ३८ ॥ यजु० अ० १७। मं० २१ ॥

भावार्थः—जैसे इस संसार में ईश्वर ने निकृष्ट मध्यम और उत्तम वस्तु तथा स्थान रचे हैं। वैसेही सभापति आदि को चाहिये कि—तीन प्रकार के स्थान रच वस्तुओं को प्राप्त हो ब्रह्मचर्य से शरीर का बल बढ़ा और मित्रों को

अच्छी शिक्षा देके ऐश्वर्य्य युक्त होवें ॥ ३८ ॥

यजु० अ० । १७ । मं० २१ ॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु । शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ ३९ ॥

यजु० । अ० । ३६ । मं० २ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्रकी वा (हृदयस्य) अन्तःकरणकी (छिद्रम्) न्यूनता (वा) वा (मनसः) मनकी (अति-तृणम्) व्याकुलता है (तत्) उसको (बृहस्पतिः) बड़े आकाश आदिका पालक परमेश्वर (मे) मेरे लिये (दधातु) पुष्ट वा पूरण करे (यः) जो (भुवनस्य) सब संसारका (पतिः) रक्षक है वह (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी (भवतु) होवे ॥ ३९ ॥ य० अ० ३६ मं. २ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि—परमेश्वर की उपासना और आज्ञा पालन से अहिंसा धर्म को स्वीकार कर जितेन्द्रियता को सिद्ध करें ॥ ३९ ॥ य० अ० । ३६ । मं० २ ॥

विश्वकर्म्मा विमना आद्विहाया

धाता विधाता परमोत सन्दृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः॥ ४० ॥ यजु० अ० । १७ । मं० २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यों ! (विश्वकर्मा) जिस का समस्त जगत् का बनाना क्रियमाण काम और जो (विमनाः) अनेक प्रकार के विज्ञान से युक्त (विहायाः) विविध प्रकार के पदार्थों में प्राप्त (धाता) सबका धारण पोषण करने (विधाता) और रचनेवाला (संदृक्) अच्छे प्रकार सबको देखता (परः) और सबसे उत्तम है तथा जिस को (एकम्) अद्वितीय (आहुः) कहते अर्थात् जिसमें दूसरा कहने में नहीं आता (आत्) और (यत्र) जिसमें (सप्तऋषीन्) पाञ्च प्राण सूत्र आत्मा और धनञ्जय इन सात को प्राप्त होकर (इषा) इच्छा से जीव (सं,मदन्ति) अच्छे प्रकार आनन्द को प्राप्त होते (उत) और जो (तेषाम्) उन जीवों के (परमा) उत्तम (इष्टानि) सुख सिद्ध करने वाले कामों को सिद्ध करता है उस परमेश्वर की तुम लोग उ-

पासना करो ॥ ४० ॥ यजु अ० १७ । मं० २६ ।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब जगत् का बनाने धारण, पालन, और नाश करने हारा एक अर्थात् जिसका दूसरा कोई सहायक नहीं होसक्ता उसी परमेश्वरकी उपासना अपने चाहे हुए काम के सिद्ध करने के लिये करना चाहिये ॥ ४० । य० अ० १७ मं २६ ॥

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः । अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥४१॥य०अ०३८।मं।२०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (चतुः स्रक्तिः) चार कोन वाली (नाभिः) नाभि मध्यमार्ग के तुल्य निष्पक्ष (स प्रथाः) विस्तार के साथ वर्त्तमान सत्पुरुष (अन्यव्रतस्य) दूसरे सब जगत् की रक्षा करने स्वभाव वाले (ऋतस्य) सत्य स्वरूप परमात्मा की सेवा करना (सः) वह (स प्रथाः) विस्तृत कार्य्यों वाला (विश्वायुः) संपूर्ण आयु

से युक्त पुरुष (नः) हमलोगों को बोधित करें (सः) वह (सप्रथाः) अधिक सुखी (सर्वायुः) समग्र अवस्था वाला पुरुष (नः) हमको ईश्वर सम्बन्धी विद्या का ग्रहण करावे जिस से हम लोग (द्वेषः) द्वेषी शत्रुओं को (अप, सिश्चिम) दूर पहुंचावें और (ह्वरः) कुटिलजनों को (अप) पृथक् करें वैसे तुमलोग भी करो ॥४१॥ य० अ० ३८। मं. ॥२०॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हेमनुष्यो ! जैसे रसको प्राप्त हुई नाभि रसको उत्पन्न कर सब शरीर के अवयवों को पुष्ट करतीहै वैसे सेवन किये विद्वान् वा उपासना किया परमेश्वर द्वेष और कुटिलतादि दोषों को निवृत्त कराके सब जीवों की रक्षा करते वा करता है उन विद्वानों और उस परमेश्वर की निरन्तर सेवा करनी चाहिये ॥ ४१ ॥ य० अ० ३८ । २० ॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानान्नामधा एक एव तꣳ सम्प्र-

इनम्भुवना यन्त्यन्न्या॥४२ ॥ य० अ० १७। मं०। २७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यः) जो (नः) हमारा (पिता) पालन और (जनिता) सब पदार्थों का उत्पादन करने हारा तथा (यः) जो (विधाता) कर्मों के अनुसार फल देने तथा जगत् का निर्माण करने वाला (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों और (धामानि) जन्म स्थान वा नाम को (वेद) जानता (यः) जो (देवानाम्) विद्वानों वा पृथिवी आदि पदार्थों का (नामधाः) अपनी विद्या से नाम धरने वाला (एकः) एक अर्थात् असहाय (एव) ही है जिसको (अन्या) और (भुवना) लोकस्थ पदार्थ (यन्ति) प्राप्त होते जाते हैं (संप्रश्नम्) जिसके निमित्त अच्छे प्रकार पूछना हो (तम्) उसको तुम लोग जानो ॥ ४२ ।। यजु० अ० १७ ॥ मं० ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो पिता के तुल्य समस्त विश्व का पालने और सब को जानने हारा एक परमेश्वर है उसके और उसकी सृष्टि के विज्ञान से ही सब मनुष्य परस्पर मिल के प्रश्न और उत्तर करें ॥ ४२ ॥ यजु० अ० १७ ।। मं० २७॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु ॥ ४३ ॥ य० अ० ३४ । मं० १ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन् आप की कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने मनुष्य को दूर तक लेजाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशक श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जाग्रत् अवस्था में (दूरम्) दूर२ (उत् एति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) संकल्प विकल्पात्मक मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छा वाला (अस्तु) हो ॥ ४३ ॥ यजु० अ० । ३४ । मं० १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का सेवन और विद्वानों का संग करके अनेक प्रकार सामर्थ्य युक्त मनको शुद्ध करते हैं जो जाग्रतावस्थामें विस्तृत—व्यवहार वाला वही मन सुषुप्ति अवस्था में शान्त होता है, जो बेग वाले पदार्थों में अति बेगवान् ज्ञानके साधन होने से इन्द्रियों के प्रवर्त्तक मन को बशमें करते हैं वे अशुभ व्यवहार को छोड़ शुभ व्यवहार में मनको प्रवृत्त कर सक्ते हैं ॥ ४३ ॥ य० । अ० ३४ । मं० । १ ॥

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ४४ ॥ य० अ० १७ । मं० ३१

पदार्थः—हेमनुष्यों ! जैसे ब्रह्मके न जानने वाले पुरुष (नीहारेण) धूमके आकार कुहर के समान अज्ञानरूप अन्धकार से (प्रावृताः) अच्छे प्रकार ढके हुए (जल्प्या) थोड़े सत्य असत्य बादानुवाद में स्थिर रहने वाले (असुतृपः) प्राण पोषक (च) और (उक्थशासः) योगाभ्यास को छोड़ शब्द अर्थ सम्बन्ध के खण्डन

मंडन में रमण करते हुए (चरन्ति) विचरते हैं वैसे हुए तुम लोग (तम्) उस परमात्मा को (नः) नहीं (विदाथ) जानते हो (यः) जो (इमा) इन प्रजाओं को (जजान) उत्पन्न करता और जो ब्रह्म (युष्माकम्) तुम अधर्मी अज्ञानियों के सकाश से (अन्यत्) अर्थात् कार्य्य कारण रूप जगत् और जीवों से भिन्न (अन्तरम्) तथा सभों में स्थित भी दूरस्थ (बभूव) होता है उस अतिसूक्ष्म आत्मा के आत्मा अर्थात् परमात्मा को नहीं जानते हो॥४४॥यजु०॥अ०॥१७॥मं०३१॥

भावार्थः—जो पुरुष ब्रह्मचर्य आदि व्रत, आचार विद्या, योगाभ्यास, धर्म के अनुष्ठान सत्संग और पुरुषार्थ से रहित हैं वे अज्ञानरूप अन्धकार में दबे हुए ब्रह्म को नहीं जानसकते, जो ब्रह्म जीवों से पृथक् अंतर्यामी सब का नियन्ता और सर्वत्र व्याप्त है उस के जानने को जिन का आत्मा पवित्र है वेही योग्य होते हैं अन्य नहीं ४४। यजु० अ० १७। मं० ३१॥

भग एव भगवाँ २॥ऽ अस्तु दे वास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा

भग॒ सर्व॒ इज्जोहवीति॒ स नो भग पुर एता भवे॒ह ॥४५॥ यजु० अ० ३४ मं० ३८॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् लोगो जो (भगः एव) सेवनीय ही (भगवान्) प्रशस्त ऐश्वर्य युक्त (अस्तु) होवें (तेन) उस ऐश्वर्यरूप ऐश्वर्य वाले परमेश्वर के साथ (वयम्) हम-लोग (भगवन्तः) समग्र शोभा युक्त (स्याम) होवें हे (भग) संपूर्ण शोभा युक्त ईश्वर (तम्, त्वा) उन आपको (सर्वः, इत्) समस्तहीजन (जोहवीति) शीघ्र पुकारता है। हे (भग) सकल ऐश्वर्य के दाता (सः) सो आप (इह) इस जगत् में (नः) हमारे (पुर, एता) अग्रगामी (भव) हूजिये ॥४५॥य०अ०३४। मं०। ३८॥

भावार्थः-हेमनुष्यो!तुम लोग जो समस्त ऐश्वर्य से युक्त परमेश्वरहै उसके और जो उसकेउपासक विद्वान् हैं उनके साथ सिद्ध तथा श्रीमान् होओ जो जगदीश्वर माता पिता के समान हम पर कृपा करता है उस की भक्तिपूर्वक इस संसार में मनुष्यों को ऐश्वर्य वाले निरन्तर किया करो

॥ ४५ ॥ यजु० अ० ३४ । मं० । ३८ ॥

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥ ४६ ॥ यजु । अ० २३ । मं० । १९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! हम लोग (गणानाम्) गणों के बीच (गणपतिम्) गणों के पालने हारे (त्वा) आपको (हवामहे) स्वीकार करते (प्रियाणाम्) अतिप्रिय सुन्दरों के बीच (प्रियपतिम्) अतिप्रिय सुन्दरों के पालने हारे (त्वा) आपकी (हवामहे) प्रशंसा करते (निधीनाम्) विद्या आदि पदार्थों की पुष्टिकरने हारों के बीच (निधिपतिम्) विद्या आदि पदार्थों की रक्षा करनेहारे (त्वा) आपको (हवामहे) स्वीकार करतेहैं, हे (वसो) परमात्मन्! जिस आप में सब प्राणी वसते हैं सो आप (मम) मेरे न्यायाधीश हूजिये जिस (गर्भधम्) गर्भ के

समान संसारको धारण करने हारी प्रकृतिको धारण करनेहारे (त्वम्) आप (आ, अजासि) जन्मादि दोषं रहित भली भांति प्राप्त होते हैं उस (गर्भधम्) प्रकृति के धर्त्ता आप को (अहम्) मैं (आ, अजानि) अच्छे प्रकार जानूँ ॥ ४६ ॥ यजु० अध्याय ॥ २३ ॥ मं० १६ ॥

भावर्थः—हे मनुष्यों ! जो सब जगत् की रक्षा चाहे हुए सुखों का विधान ऐश्वर्यों को भली भांति देता, प्रकृति का पालक और सब बीजों का विधान करता है उसी जगदीश्वर की उपासना सब करो ॥ ४६ ॥ यजु० अध्या० २३ । मं० ॥ १६ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ४७ ॥ य० अ० १ मं० ५ ॥

पदार्थः—हे (व्रतपते) सत्यभाषण आदि धर्मों के पालन करने और (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर मैं (अनृतात्) जो झूँठसे अलग । (सत्यं) वेदाविद्या प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ

विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्व अर्थात् सिद्धांत के प्रकाश कराने हारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (व्रतं) सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना है उस का (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियमसे ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूं (मे) मेरे (तत्) उस सत्यव्रत को आप (राध्यतां) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिस से कि (अहं) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम करने को (शकेयं) समर्थ होऊं । और मैं (इदं) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम (चरिष्यामि) करूंगा ॥ ४७ ॥ य० अ० १ । मं० ५ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से सेवन करने योग्य धर्म का उपदेश किया है जो कि—न्याययुक्त परीक्षा किया हुआ सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध और सबका हितकारी तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक अर्थात् मोक्षसुख का हेतु है यही सब को आचरण करने योग्य है और उससे विरुद्ध जो कि

अधर्म कहाता है वह किसी को ग्रहण करने योग्य कभी नहीं होसकता क्योंकि–सर्वत्र उसी का त्याग करना है इसी प्रकार हमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि-हे परमेश्वर! हम लोग वेदों में आप के प्रकाशित किये सत्य धर्म का ही ग्रहण करें तथा हे परमात्मन्! आप हम लोगों पर ऐसी कृपा कीजिये कि–जिस से हम लोग उक्त सत्यधर्मका पालन करके अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें जैसे सत्यव्रत के पालने से आप व्रतपति हैं वैसे ही हमलोग भी आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालनेवाले हों तथा धर्म करने की इच्छा से अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखों को प्राप्त होकर सब प्राणियों को सुख पहुंचाने वाले हों, ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिये ॥ शतपथ ब्राह्मण के बीच इस मंत्र की व्याख्या में कहा है कि–मनुष्यों का आचरण दो प्रकार का होता है एक सत्य और दूसरा झूठ का अर्थात् जो पुरुष वाणी मन और शरीर से सत्य का आचरण करते हैं वे देव कहाते और जो झूंठ का

आचरण करनें वाले हैं वे असुर राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं॥ ४७॥ य० १।५।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व-ऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४८॥ य० अ० २५। मं १३॥

पदार्थः—हे मनुष्यों (यः) जो (आत्मदाः) आत्मा को देने और (बलदाः) बल देने वाला (यस्य) जिसकी (प्रशिषम्) उत्तम शिक्षा के (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) सेवते (यस्य) जिसके समीप से सब व्यवहार उत्पन्न होते (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय (अमृतम्) अमृत रूप और (यस्य) जिसकी आज्ञा का भंग (मृत्युः) मरण के तुल्य है उस (कस्मै) सुखरूप (देवाय) स्तुति के योग्य परमात्मा के लिये हमलोग (हविषा) होमने के पदार्थ से (विधेम) सेवा का विधान करें॥४८॥ य० अ० २५। मं०। १३॥

भावार्थः—हे मनुष्यों ! जिस जगदीश्वर की उत्तम शिक्षा में की हुई मर्यादा में सूर्य आदि लोक नियम के साथ वर्त्तमान हैं जिस सूर्य के बिना जलकी बर्षा और अवस्था का नाश नहीं होता वह सवितृमंडल जिसने बनाया है उसी की उपासना सब मिलकर करें ॥ ४८ ॥ य० अ० । २५ । म० १३ ॥

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः । अथो ऽअन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषुनः । क्षेमायवः शांत्यै प्रपद्ये शिव ॐ शग्म ॐ शंय्योःशंय्योः ॥ ४९ ॥ यजु० अ० ३ । मं० । ४३ ॥

पदार्थः- (इह) इस गृहस्थाश्रम वा संसार में । (वः) तुम लोगों के (शांत्यै) सुख । (नः) हमलोगों की । (क्षेमाय) रक्षा के लिये । (गृहेषु) निवास करने योग्य स्थानों में जो । (गावः) दूध देने वाली गौ आदि पशु । (उपहूताः) समीप प्राप्त किये वा । (अजावयः) भेड़ बकरी आदि पशु । (उपहूताः) समीप प्राप्त हुए,(अथो)

इसके अनन्तर (अन्नस्य) प्राण धारण करने वाले। (कीलालः) अन्न आदि पदार्थों का समूह (उपहूतः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ हो इन सब की रक्षा करता हुआ जो मैं गृहस्थ हूं सो (शंय्योः) सब सुखों के साधनों से। (शिवम्) कल्याण वा। (शग्म २) उत्तम सुखों को। (प्रपद्ये) प्राप्त होऊं॥ ४६॥य० अ० ३। मं०।४ ३॥

भावार्थः—गृहस्थों को योग्य है कि-ईश्वरकी उपासना वा उसकी आज्ञा के पालन से गौ हाथी घोड़े आदि पशु तथा भोजन पीने स्वादु योग्य पदार्थों का संग्रह कर अपनी वा औरों की रक्षा करके ज्ञान धर्म विद्या और पुरुषार्थ से इस लोक वा परलोक के सुखों को सिद्ध करना चाहिये किन्तु किसी पुरुषको आलस्य में नहीं रहना चाहिये किंतु सब मनुष्य पुरुषार्थ वाले होकर धर्म से चक्रवर्त्ती राज्य आदि धनों को संग्रह कर उनकी अच्छे प्रकार रक्षा करके उत्तम२ सुखोंको प्राप्तहों इससे अन्यथा मनुष्यों को वर्त्तना न चाहिये, क्योंकि—अन्यथा वर्तने वालों को सुख कभी नहीं होता॥४६॥ यजु० अ०।३। मं० ४३॥

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियं जिन्वमव॑से हूमहे व॒यम् । पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युर-द॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥५०॥ यजु० अ० २५ मं० १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यों (वयम्) हमलोग (अवसे) रक्षा आदि के लिये (जगतः) चर और (तस्थुषः) अचर जगत् के (पतिम्) रक्षक (धियं जिन्वम्) बुद्धि को तृप्त प्रसन्न वा शुद्ध करने वाले (तम्) उस अखंड (ईशानम्) सबको बशमें रखने वाले सबके स्वामी परमात्मा की (हूमहे) स्तुति करते हैं वह (यथा) जैसे (नः) हमारे (वेद-साम) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिये (पूषा) पुष्टि कर्त्ता तथा (रक्षिता) रक्षा करने हारा (स्वस्तये)सुख के लिये (पायुः) सबका रक्षक (अदब्धः) नहीं मारने वाला (अस्तु) होवे वैसे तुम लोग भी उसकी स्तुति करो और वह तुम्हारे लिये भी रक्षा आदि का करने वाला होवे ॥ ५० ॥ य० अ० ५२ । मं० १८ ॥

भावार्थः—सब विद्वान् लोग सब मनुष्यों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि—जिस सर्वशक्तिमान् निराकार सर्वत्र व्यापक परमेश्वर की उपासना हमलोग करें तथा उसी को सुख और ऐश्वर्य का बढाने वाला जानें उसीकी उपासना तुम लोग भी करो और उसी को सबकी उन्नति करने वाला जानो ॥५०॥ य० । २५ । १८

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ॥ अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः ॥ ५१ ॥ यजु० अ० २ । मं० १० ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर(मयि)मुझ में (इदम्) प्रत्यक्ष(इन्द्रियम्)ऐश्वर्य की प्राप्ति के चिन्ह तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देखा वा प्रकाशित किया है और सब सुखों को सिद्ध कराने वाले जो विद्वानों को दिया है जिस को वे इन्द्र अर्थात् विद्वान् लोग प्रीति पूर्वक सेवन करते हैं उन्हें तथा । (रायः) विद्या सुवर्ण वा चक्रवर्ती राज्य आदि धनों को

(दधातु) नित्यस्थापन करे और उसकी कृपा से तथा हमारे पुरुषार्थ से। (मघवानः) जिन में की बहुत धन विद्यमान राज्य आदि पदार्थ हैं जिन करके हम लोग पूरण ऐश्वर्य्ययुक्त हों वैसे धन। (नः) हम विद्वान् धर्मात्मा लोगों को। (सचन्तरम्) प्राप्त हों तथा इसी प्रकार (अस्माकम्) हम परोपकार करने वाले धर्मात्माओं की। (आशिषः) कामना (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों और ऐसे ही । (नः) हमारी (आशिषः) न्यायपूर्वक इच्छायुक्त जो क्रिया हैं वे भी (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों ॥ ५१ । यजु० अ० २ । मं० । १०

भावार्थः—जो मनुष्य पुरुषार्थी परोपकारी ईश्वर के उपासक हैं वेही श्रेष्ठज्ञान उत्तमधन और सत्यकामनाओं को प्राप्त होते हैं और नहीं ॥ ५१ ॥ य० अ० २ मं० । १० ॥

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषँ स्वाहा ॥ ५२ ॥ य० अ० ३२ । मं० १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यों ! मैं (स्वाहा) सत्य

क्रिया वा वाणी से जिस (सदसः) सभा, ज्ञान न्याय वा दण्ड के (पतिम्) रक्षक (अद्भुतम्) आश्चर्य्य गुण कर्म स्वभाव वाले (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के मालिक जीव के (काम्यम्) कमनीय (प्रयम्) प्रीति के विषय प्रसन्न करने हारे वा प्रसन्नरूप परमात्मा की उपासना और सेवा करके (सनिम्) सत्य असत्य का जिस से सम्यक् विभाग कियाजाय उस (मेधाम्) उत्तमबुद्धि को (अयाशिषम्) प्राप्त होऊं उस ईश्वर की सेवा करके इस बुद्धि को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥ ५२ ॥ य. अ० ३२ । मं. १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा का सेवन करते हैं वे सब विद्याओं को पाके शुद्धबुद्धि से सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥५२॥ य० अ० ३२। मं० १३ ॥

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥५३॥ यजु० अ० ३२।मं० १४

पदार्थः—हे (अग्ने) स्वयं प्रकाशरूप होने से विद्या के जताने हारे ईश्वर वा अध्यापक

विद्वन् (देवगणाः) अनेकों विद्वान् (च) और (पितरः) रक्षा करनेहारे ज्ञानी लोग (याम्) जिस (मेधाम्) बुद्धि वा धन को (उपासते) प्राप्त होके सेवन करते हैं (तया) उस (मेधया) बुद्धि वा धन, सो (माम्) मुझ को (अद्य) आज (स्वाहा) सत्य वाणी से (मेधाविनम्) प्रशंसित बुद्धि वा धनवाला (कुरु) कीजिये ॥५३॥ य० अ० ३२ । मं ॥ १४ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग परमेश्वर की उपासना और आप्त विद्वान् की सम्यक् सेवा करके शुद्ध विज्ञान और धर्म से हुए धन को प्राप्त होने की इच्छा करें और दूसरों को भी ऐसे ही प्राप्त करावें ॥ ५३ ॥ य० ३२ ॥ १४ ॥

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः । मेधामिंद्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥५४॥य० अ० । ३२ ॥ मं० ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (वरुणः) अति श्रेष्ठ परमेश्वर वा विद्वान (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया से (मे) मेरे लिये (मेधाम्) शुद्ध बुद्धि वा धन को (ददातु) देवे (अग्निः) विद्या से प्रकाशित

(प्रजापतिः) प्रजाकी रक्षक (मेधाम्) बुद्धि को देवे (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्यवान् (मेधाम्) बुद्धि को देवे (च) और (वायुः) बलदाता बलवान् (मेधाम्) बुद्धि को देवै (च) और (धाता) सब संसार वा राज्य का धारण करने हारा ईश्वर वा विद्वान् (मे) मेरे लिये बुद्धि धन को (ददातु) देवै वैसे तुम लोगों को भी देवै ॥ ५४ ॥ य० अ० ३२। मं० । १५ ॥

भावार्थः- मनुष्य जैसे अपने लिये गुण कर्म स्वभाव और सुख को चाहैं वैसे औरों के लिये भी चाहें । जैसे अपनी २ उन्नति की चाहना करें वैसे परमेश्वर और विद्वानों के निकट से अन्यों की उन्नति की प्रार्थना करें, केवल प्रार्थना ही न करें किन्तु सत्य आचरण भी करें जब २ विद्वानों के निकट जावें तब २ सबके कल्याण के लिये प्रश्न और उत्तर किया करें ॥ ५४ ॥ य० अ० ३२। मं० । १५ ॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियम-श्नुताम् । मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ ५५ ॥ य० अ० ३२। मं० १६ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा और हे विद्वन् ! तेरे पुरुषार्थ से (स्वाहा) सत्याचरण रूप क्रिया से (मे) मेरे (इदम्) ये (ब्रह्म) वेद ईश्वर का विज्ञान वा इनका ज्ञाता पुरुष (च) और (क्षत्रम्) राज्य धनुर्वेद विद्या और क्षत्रियकुल (च) भी ये (उभे) दोनों (श्रियम्) राज्य की लक्ष्मी को (अश्नुताम्) प्राप्त हों जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (मयि) मेरे निमित्त (उत्तमाम्) अतिश्रेष्ठ (श्रियम्) शोभा वा लक्ष्मी को (दधतु) धारण करें। हे जिज्ञासुजन ! (ते) तेरे लिये भी (तस्यै) उस श्री के अर्थ हम लोग प्रयत्न करें ॥ ५५ ॥ य० । अ० । ३२ । मं० । १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञापालन और विद्वानों की सेवा सत्कार से सब मनुष्यों के बीच से ब्राह्मण क्षत्रिय को सुन्दर शिक्षा विद्यादि सद्-गुणों से संयुक्त और सब की उन्नति का विधान कर अपने आत्मा के तुल्य सब में वर्तें वह सब को पूजने योग्य होवें ॥ ५५ य० अ० ३२ मं० १६

—आर्य्याभिविनय द्वितीयः प्रकाशः सम्पूर्णः ॥